अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ का साप्ताहिक मुखपत्र

भूदान-यज्ञ

भूदान यज्ञ मूलक ग्रामोद्योग प्रधान अहिंसक क्रांति का शंखनादक

वार्षिक मूल्य ६) ✠ सम्पादक : धीरेन्द्र मजूमदार ✠ एक प्रति २ आना

वर्ष–३, अंक–९ ✠ राजघाट, काशी ✠ शुक्रवार, ३० नवंबर, '५६

वृत्ति अन्तर्मुखी होनी चाहिए

एक युवक कार्यकर्ता ने पूछा—"मैं अपने लिए क्या आदर्श रखूँ? ब्रह्मचारी रहूँ, या शादी करके गृहस्थ बनूँ?" विनोबाजी ने कहा—"हृदय के अंदर क्या वृत्ति उठती है, संयम की शक्ति और भक्ति कितनी है, यह देख कर तय करना होता है। किसी ने शादी नहीं की, इसीलिए वह ब्रह्मचारी बनता है, ऐसी बात नहीं। उसी तरह किसी ने शादी की, इसलिए वह गृहस्थ नहीं बनता है। गृहस्थाश्रम में उत्तम संयम का जीवन बिताना पड़ता है, घरवालों की और अतिथियों की सेवा के लिए मर मिटना पड़ता है, तभी वह गृहस्थ बनता है। वैसे ही कोई शख्स ब्रह्मचारी तब होता है, जब अन्दर ईश्वर की भक्ति भरी हो, वासनाओं पर काबू पाया हो, अहंकार, आलस्य आदि न हो, वृत्ति हमेशा अंतर्मुखी हो। इसमें सिर्फ शादी करने की या न करने की बात नहीं है। छोड़ने की चीज, अंदर से छोड़नी होती है।"

भदान-आंदोलन 'सर्वजनावलंबी' बनने की राह पर—

क्रान्ति का री नि र्णा य

(विनोबा)

गांधीजी के जाने के बाद गांधी-विचार पर श्रद्धा रखने वाले देश भर के सेवक सेवाग्राम में इकट्ठा हुए और उन्होंने काफी विचार-मंथन के बाद सर्वोदय-समाज की स्थापना का संकल्प किया। वह एक वैचारिक और वैप्लविक संकल्प था, जिसमें विचार-परिवर्तन, हृदय-परिवर्तन और जीवन-परिवर्तन की त्रिविध प्रक्रिया अंतर्गत थी। ऐसे संकल्प को 'क्रतु' कहते हैं। 'सर्वोदय-क्रतु' का जन्म इस प्रकार मार्च १९४८ में सेवाग्राम में हुआ।

क्रतु में से यज्ञ की निष्पत्ति होती ही है। 'अहं क्रतुः अहं यज्ञः' यह गीता-वचन सबको मालूम है। तदनुसार अकल्पित और अभावित गति से भूदान-यज्ञ का प्रादुर्भाव शिवरामपल्ली के सर्वोदय-संमेलन के बाद तेलंगाना में हुआ। पिछले पाँच साल में इस यज्ञ की एक-एक कला प्रकट होती गयी। कुल सर्वोदय-सेवक मानो तमस् में से ज्योति में आ गये। गाँव-गाँव की लोक-शक्ति का जो दर्शन इन पाँच वर्षों में हुआ, अनोखा ही था। इस नवज्योति का प्रभाव सर्वोदय के कार्यक्रम की हरेक शाखा पर पड़ा और सर्वत्र चेतना का संचार हुआ। अक्सर लोक-शक्ति का नया आविष्कार भी पुराने संचित के आधार पर होता है। गांधीजी की स्मृति में देश के नेताओं ने दूर-दृष्टि से एक निधि इकट्ठा किया था, जो आज भी मौजूद है और अपने सकुशल क्षय की राह देख रहा है। इस निधि से भू-दान-आंदोलन को जो सहज मदद मिल सकती थी ली गयी, और लेना ठीक भी था। पर नवचेतना को, प्रथम आविष्कार में संचित यद्यपि मददगार हो सकता है, तथापि वह आधार प्राथमिक विकास के बाद भी अगर जारी रहता है, तो आगे की प्रगति को वह रोक सकता है। जैसे मैंने कहा, गांधी-निधि इकट्ठा करने में दूर-दृष्टि ज़रूर थी, पर सुदूर दृष्टि नहीं थी। सीमित दूर-दृष्टि कभी-कभी सुदूर दृष्टि को काटती है। निधि आज भी पड़ा है, उसकी मदद आज भी मिल रही है और आगे भी मिल सकती है, जब तक वह अवशिष्ट होगा। पर मैं साल-डेढ़ साल से सोचता रहा कि वह आधार तोड़े बिना वैश्वानर-अग्नि प्रकट नहीं हो सकेगा। होमाग्नि प्रकट हो सकता था, जो हुआ। पर होमाग्नि जब तक कुंड में सीमित रहेगा, तब तक वैश्वानर-अग्नि की आशा नहीं कर सकते। इसीलिए कुंडच्छेद करना ही पड़ता है।

हमारे सब साथी इस पर सोचते रहे, कुछ झिझक भी थी। पर जैसे सन् सत्तावन नजदीक आया, झिझक छूट गयी और अभी जब 'सर्वोदय-मित्र-मंडली' 'पलनी' में विचार-विमर्श के लिए एकत्रित हुई थी, फैसला किया गया कि अब भूदान-यज्ञ को स्वावलंबी अर्थात् 'सर्वजनावलंबी' हो जाना चाहिए। क्रतु से यज्ञ, यज्ञ से स्वधा, यह क्रम ही है : 'अहं क्रतुः अहं यज्ञः स्वधाऽहम्।'

इस निश्चय से अब जन-शक्ति के अनंत स्रोत फूट निकलेंगे। स्वधा याने आत्मधारण-शक्ति, एक आंतरिक शक्ति है। इसलिए वे स्रोत किस तरह फूट निकलेंगे, इसका कोई अंदाजा किया नहीं जा सकता। "जैसे-जैसे नया आधार मिलता जायगा, सहज ही संचित टूटेगा—" यह विचार, विचार नहीं है, वह एक मोह-चक्र है।

असंग शस्त्रेण दृढेण छित्वा
ततः परंतत् परिमार्गितव्यम्

पहले अनासक्ति से काटो, फिर आगे शोध करो। यह है क्रांति की प्रक्रिया। अब शक्ति का शोध होगा, जो हमारे हनुमान करेंगे, ऐसी हमें उम्मीद है। जिस माता ने लाखों हाथों से भूमि-दान दिया है, वह औदार्य-मूर्त्ति है; जो माँगने की हिम्मत रखता है, उसे वह देती है। बिना मांगे भी वह देती, अगर हम संचित का आश्रय नहीं लेते। पर वह हमें सूझा नहीं; जिस हालत में हम थे, सूझ भी नहीं सकता था। अब सूझा है, तो मांगना पड़ेगा और मिल भी जायगा।

कन्नालमपट्टी, मदुरा,
ता. २३-११-५६

सर्व-सेवा-संघ के निश्चय

हाल ही में पलनी (मदुरा, मद्रास-राज्य) में आयोजित अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ की प्रबन्ध-समिति की बैठक ने विनोबाजी के सान्निध्य में कतिपय अत्यन्त महत्त्वपूर्ण निश्चय किये हैं। नीचे हम वे निश्चय दे रहे हैं :—

सर्व-सेवा-संघ ने निश्चय किया है कि ३१ दिसम्बर १९५६ से गान्धी-स्मारक-निधि से अनुदान लेना बंद कर दिया जाय और सर्वजनावलंबन पर निर्भर रहा जाय, (२) भूदान-समितियाँ भंग कर दी जायँ और जिलों में भूदान का कार्य स्वतंत्र कार्यकर्ताओं के माध्यम से सम्पन्न किया जाय और ये कार्यकर्ता, बिना किसी अधिकार और सत्ता के सीधे विनोबाजी के प्रति जिम्मेदार रहें।

विनोबाजी ने कार्यकर्ताओं और संघ के सदस्यों से कहा कि एक-एक कार्यकर्ता —अखिल भारतीय नेताओं सहित—एक-एक जिले की जिम्मेदारी ले ले। विनोबाजी ने कार्यकर्ताओं की ये विशेषताएँ बतलायीं :

(१) सत्य, अहिंसा और और अपरिग्रह में आस्था और उसका व्यवहार, (२) वर्तमान राजनीति के स्थान पर लोकनीति में आस्था, (३) निष्काम सेवा का मार्ग और सकाम सेवकों के प्रति औदार्य का भाव तथा (४) सर्वोदय के प्रति सर्वार्पण।

विनोबाजी को विश्वास है कि इससे १९५७ में क्रान्ति का मार्ग प्रशस्त हो सकेगा। —सं०

हर व्यक्ति धर्म और सेवा के लिए जिम्मेदार

(विनोबा)

आज कुल दुनिया में दो प्रकार की संस्थाएँ बहुत मजबूत हुई हैं—एक है धर्मसंस्था और दूसरी है शासनसंस्था। ये दोनों संस्थाएँ लोकसेवा के ख्याल से बनायी हुई हैं। दोनों संस्थाओं की आवश्यकता महसूस हुई और समाज इन दोनों का उपयोग आज भी कर रहा है। जब ये दोनों संस्थाएँ बनी थीं, तब तो समाज को वे बहुत जरूरी मालूम हुईं। लेकिन अब ऐसी हालत आ गयी है कि इन दोनों से छुटकारा पाना समाज के लिए जरूरी हो गया है। अब उनके जारी रहने से लाभ होने के बदले नुकसान होगा।

धर्म-संस्थाओं का कोई असर नहीं

आज दुनिया भर में धर्म की क्या हालत है? ईसाई धर्म, इस्लाम, हिंदूधर्म और बौद्धधर्म काम करते हैं। मैंने चार बड़े धर्मों का नाम लिया। इनके अलावा दूसरे छोटे-छोटे धर्म भी हैं। इन सब धर्मवालों ने अपनी-अपनी संस्थाएँ बनायी हैं। योरप में पोप काम करता है और धर्म की अच्छी मजबूत रचना बनी हुई है। जैसे जिले-जिले के लिए डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट (जिलाधीश) होते हैं, वैसे ही हर जिले के लिए चर्च का भी एक अधिकारी होता है। इसी प्रकार की रचना इस्लाम में भी है। जगह-जगह उनकी मस्जिदें होती हैं, जहाँ मुल्ला होते हैं। उनकी तरफ से कुछ धर्मप्रचार की योजना होती है, कुछ उत्सव वगैरा भी चलते हैं। हिंदुओं में भी ऐसा ही चलता है। मंदिरों के जरिये यह सारा कार्य चलता है। यही हालत बौद्धों की है। ये सारे धर्म अहिंसा, शांति, प्रेम आदि मानने वाले हैं। लेकिन आप देख रहे हैं कि दुनिया में शांति-स्थापना में इन सब संस्थाओं का कोई असर नहीं हो रहा है। कोई देश दूसरे देश पर हमला करता है, तो पोप को पूछता नहीं है कि हमला करना ठीक है या बेठीक। वह समझता है कि पोप का अधिकार दूसरा है, हमारा अधिकार दूसरा है। अपने व्यवहार में ये धर्म का कोई असर मानते नहीं। इतना ही नहीं, बल्कि लड़ाइयाँ चलती हैं, तो उनमें किसी पक्ष की विजय हो, ऐसी प्रार्थनाएँ चर्च में चलती हैं। समाज के व्यवहार में इन संस्थाओं का कोई खास असर नहीं होता है, इतना ही होता तो भी खैरियत थी, परंतु समाज पर उनका बहुत बुरा असर भी हो रहा है।

श्रद्धालुओं का दोष

जो श्रद्धावान लोग हैं, उन पर इन संस्थाओं का बुरा असर हो रहा है। श्रद्धावान लोगों ने यह मान लिया है कि धर्म का जो कुछ कार्य है, वह करने की जिम्मेदारी इन पुरोहितों की है, जिन्हें हमने उस काम के लिए चुना है। इसलिए वे समझते हैं कि धर्म के वास्ते हमें कुछ नहीं करना है। सुन्दर मंदिर बना दिया, उसके वास्ते कुछ जमीन, संपत्ति आदि भी दे दी, पूजा अर्चा का इन्तजाम ठीक से कर दिया तो हमारा धर्मकार्य खत्म है, ऐसा वे समझते हैं। जो श्रद्धा-विहीन हैं, उन्होंने धर्म को समाप्त किया, इसकी मुझे कोई शिकायत ही नहीं करनी है। परंतु जो श्रद्धा रखते हैं, उन्होंने धर्मकार्य चंद लोगों को सौंप कर अपने को इससे मुक्त रखा और धर्म को समाप्त कर दिया।

'गोपाल' के नाम पर बीड़ी!

आज सुबह हम पलनी स्वामी के दर्शन के लिए ऊपर पहाड़ पर गये थे। हमने देखा कि लोगों ने रास्ते में सीढ़ियाँ बनायीं और कुछ मंडप भी बनाये हैं। इससे अपना कर्तव्य पूरा हुआ, ऐसा उन्होंने समझ लिया। ऊपर एक मिलवाले ने एक मंडप बनाया है, उस पर मिल का नाम बडे अक्षरों में लिखा हुआ है। वहाँ जा कर हम पलनी स्वामी का स्मरण करें या मिलवाले का स्मरण करें?

हमने एक दफा धारापुरम् में घूमते समय एक मकान पर एक तमिल विज्ञापन देखा। एक बड़ा सुन्दर चित्र था, बालकृष्ण मुरली बजा रहे थे और नीचे लिखा था 'गोपाल-बीड़ी'। अब इन सबको कौन रोकेगा? क्या यह कोई धर्म का कार्य है? लेकिन कोई श्रद्धावान हिन्दू इसके बारे में सोचेंगे नहीं। वे इसे अपनी जिम्मेदारी ही नहीं समझते हैं। इतने बड़े अक्षरों में भगवान् के नाम के साथ बीड़ी का विज्ञापन दिया जाता है; लेकिन किसीको कुछ दुःख भी नहीं होता है। इस तरह श्रद्धावान लोगों ने कुल धर्म की हानि की है। धर्म की जिम्मेवारी हमने जिन पर सौंपी, उन्होंने उसे अच्छी तरह से नहीं निभाया, यह मेरी पहली शिकायत है। लेकिन वे उसे अच्छी तरह से निभाते, तो भी वह गलत काम है, यह मेरी दूसरी शिकायत है।

शासनसंस्था की भी वही दुर्गति

धर्मसंस्था की जो हालत है, वही हालत शासन की और समाज-सेवा की है। हम चन्द लोगों को चुन कर देते हैं और फिर वे हमारे प्रतिनिधि के नाते समाज-सेवा के सब काम करेंगे, इनके हाथ में नौकर-वर्ग रहेगा। इन चुने हुए लोगों पर हमने शासन की और सेवा की जिम्मेदारी सौंपी है। जिन्हें काम सौंपा है, वे वह काम ठीक तरह से नहीं कर रहे हैं। परंतु वे वह काम अच्छी तरह से करते, तो भी मेरा उस पर आक्षेप है। जो लोग अपने शासन और सेवा का भार चंद प्रतिनिधियों पर सौंपेंगे; धर्म की, चिंतन की जिम्मेदारी चंद लोगों पर सौंपेंगे, वे बिलकुल निस्सार होंगे, उनके जीवन में कोई प्राण-तत्त्व नहीं रहेगा। लोग इसे अभी समझ नहीं रहे हैं, बल्कि वे उल्टा बाबा से ही पूछते हैं कि तुम गाँव-गाँव क्यों घूमते हो? जमीन हासिल करने की और बाँटने की तकलीफ क्यों उठा रहे हो? सरकार के जरिये यह काम क्यों नहीं करवा लेते हो? याने लोग स्वयं तो अपनी सार्वजनिक सेवा की जिम्मेदारी मानते ही नहीं, लेकिन बाबा काम कर रहा है, तो उसीसे पूछते हैं कि नाहक काम क्यों करते हो।

लोकशाही भी लाचार!

यह हिंदुस्तान के समाज की ही हालत है, ऐसी बात नहीं। दुनिया भर के समाज में कम-बेशी सही, पर ऐसी ही हालत है। आपने अभी क्या देखा? लोकशाही का और लोकशाही चलाने वाली संस्था का उत्तम नमूना इंग्लैंड और इंग्लैंड की पार्लमेंट है, ऐसा माना जाता है। परंतु वहाँ के लोगों ने जिनके हाथ में सत्ता सौंपी है, उन्होंने मिस्र पर हमला किया। इंग्लैंड के लोगों के लिए यह बहुत ही गौरव की बात है कि उन्होंने उस आक्रमण के विरोध में खूब जोरों से आवाज उठायी। लेकिन फिर भी वे उस आक्रमण को रोक नहीं सके। वहाँ इतनी उत्तम लोकशाही चलाने वाले भी कमजोर साबित हुए। सारी दुनिया की आवाज उसके खिलाफ उठी, 'यू.एन.ओ.' का प्रस्ताव भी था, इसलिए आखिर उन्हें वह आक्रमण रोकना पड़ा। परंतु जब हम अपने शासन का भार चन्द लोगों पर सौंपते हैं, तो वही हालत होगी। क्या रूस में, क्या इंग्लैंड में, क्या चीन में, क्या अमेरीका में, हर देश में यही हालत है कि उन्होंने अपना कारोबार चंद लोगों के हाथ में सौंपा है, और जिनके हाथ में सौंपा है, उनका अनुसरण दूसरों को करना पड़ता है। कम-बेशी प्रमाण में सारे दुनिया म यह हालत है और हिंदुस्तान की विशेष है, क्योंकि यहां की जनता में उस प्रकार की जाग्रति नहीं है, जैसी इंग्लैंड वगैरा देशों की जनता में है।

हम लोगों ने अपना धर्म चन्द लोगों के हाथ में सौंपा है और अपनी व्यवस्था का काम भी चन्द लोगों के हाथ में सौंपा है। दोनों बाजू से हम पुरुषार्थहीन बन गये हैं। सर्वोदय समाज का यह विचार है कि वह हर व्यक्ति से कहता है कि शासन का अपना इन्तजाम तुम करो, धर्म का अपना आचरण तुम करो।

लोगों ने जो अच्छे-अच्छे काम किये, उनकी हम कद्र करते हैं। अगर हमने उसकी संस्था बना कर ये काम चंद लोगों के हाथ में सौंपे न होते, तो उससे बहुत ज्यादा अच्छे काम होते। हमारी सरकार भी कुछ अच्छा काम करती है, कुछ गलत काम करती है। सरकार के गलत कामों के खिलाफ आवाज उठाने के लिए हमारी जरूरत नहीं है, लेकिन सरकार के अच्छे कामों के खिलाफ आवाज उठाने के लिए हमारी जरूरत है। लोगों को यह कहने की जरूरत है कि अरे, तुम भेड़ बन रहे हो। हम पर कोई अच्छा शासन चलाये और हम शासित हो जायँ, यही हमें बुरा लगता है।

इधर-उधर जो धर्मकार्य चलता है, उतना काफी नहीं है। अगर मनुष्य को इसीमें संतोष हो तो ठीक नहीं है। हम आशा करते हैं कि हर एक के हृदय में सर्वोदय-विचार स्थिर हो जाय और समाज-सेवा की और धर्मकार्य की जिम्मेवारी हममें से हर एक पर है, इसका भान हर एक को हो।

पलनी, मदुरा, १७-११-'५६

ईश्वरीय योजना

अदित्संतं चित् आघृणे!
मनो दानाय चोदय।
पणेश् चित् विम्रदा मनः।—ऋग्वेद

भावार्थ—तपा-तपा कर शुद्ध करने वाले हे देव! जो (आज) देना नहीं चाहता, उसका मन भी देने की ओर प्रेरित कर।
कृपण का मन भी मृदु बना।

चिंतनिका—(१) भीतर से मानसिक ताप, बाहर से परिस्थिति का ताप। मानव की शुद्धि के लिए यह ईश्वर की योजना है। आ+घृणि=तपाने वाला, शोधक। (२) पणि—व्यापार, व्यवहार, बाजार करने वाले लोग व्यवहार कुशल कहलाने वाले, परिणाम में कृपण, कंजूस।

(मराठी 'सेवक', अप्रैल '५३ से) —विनोबा

सर्वोदय-कल्पना का गाँव

(धीरेन्द्र मजूमदार)

प्रश्न : १ सर्वोदय-व्यवस्था में गाँव कैसा होगा, इसकी आपकी क्या कल्पना है ?

उत्तर : 'सर्वोदय' शब्द गांधीजी का है। विचार भी उन्हीं का है। उन्होंने गाँव की व्यवस्था के बारे में जो विचार दिये हैं, वे सर्वोदय के मूल विचार हैं। सर्वोदय के आधार बने समाज में गाँव सामाजिक संघटन की बुनियादी इकाई है। सामाजिक ढाँचे में इस तरह के असंख्य गाँव होंगे। ऐसे समाज में व्यक्ति से लेकर विश्व तक मनुष्यों के सम्बन्धों की परिधियाँ व्यक्ति से शुरू होकर बराबर बड़ी होती जायँगी, ठीक उसी तरह जैसे समुद्र में पानी की परिधि एक जगह उठती है और धीरे-धीरे यहाँ तक बड़ी होती जाती है कि समुद्र भर में व्याप्त हो जाती है। स्पष्ट है कि परिधि रूप विकास के इस क्रम के केन्द्र में व्यक्ति होगा। व्यक्ति का व्यक्तित्व सबसे ऊपर है। व्यक्ति अपने गाँव के लिए मरने-मिटने को तैयार रहेगा, और गाँव अपने से बड़े ग्राम-समूह के लिए। इस तरह व्यक्ति से विश्व तक जीवन एक होगा। उस एक धागे में अनगिनत व्यक्ति पिरोये होंगे, जो एक-दूसरे के प्रति आक्रमण की भावना नहीं रखेंगे, बल्कि विनम्र भाव से विश्व-परिवार का गौरव अनुभव करेंगे, जिसके वे अभिन्न अंग और इकाई हैं।

जाहिर है कि यह रचना पिरैमिड की शक्ल की नहीं है, जिसमें ऊपर का पूरा बोझ नीचे के हिस्से पर पड़ता है, बल्कि समुद्र में फैलने वाली पानी की परिधियों की तरह है जहाँ छोटी परिधि एक जगह से प्रारंभ होकर विकसित होती जाती है और अंत में समुद्र की व्यापकता में विलीन हो जाती है।

प्रश्न : २. तो यह बात स्पष्ट हुई कि व्यक्ति के व्यक्तित्व की पूरी रक्षा करते हुए विश्व-कुटुम्ब का निर्माण करना सर्वोदय की कल्पना का मूल आधार है। लेकिन अब यह बताइये कि इस कल्पना का साकार रूप क्या होगा। इस विचार के अनुसार बने समाज का आर्थिक और राजनीतिक संघटन कैसा होगा ? आखिर, समाज का प्रतिदिन का जीवन कल्पना पर नहीं, उसकी व्यवस्था पर निर्भर करता है। गांधीजी ने दुनिया के सामने ग्राम-स्वावलंबन का विचार रखा था। ग्राम-स्वावलंबन के आधार पर वह समाज का निर्माण करना चाहते थे। इसी में वह व्यक्ति और समाज, दोनों की मुक्ति देखते थे।

उत्तर : हमारा देश गाँवों का है। उत्पादन का मूल साधन भूमि है। भारत कुछ आज ही गाँवों का देश नहीं है; बल्कि हमेशा ही ऐसा रहने वाला है। यह स्थिति हमारे लिए कल्याणकारी है। हम इसे बदलें ही क्यों ? सच बात तो यह है कि हम भारत को शहरों का देश बनाना चाहें, तब भी नहीं बना सकते। गांधीजी की सम्पूर्ण कल्पना की बुनियाद में यह मूल तथ्य है। इसीलिए वह देश के पाँच लाख गाँवों के स्वराज्य को ही असली स्वराज्य मानते थे। स्वराज्य भी आंशिक नहीं, बल्कि उनके शब्दों में सम्पूर्ण गणतंत्र राज्य, जो जीवन की मूल आवश्यकताओं में अपने पड़ोसियों से स्वतंत्र है, आत्म-निर्भर है। भोजन और वस्त्र में स्वावलंबन हर गाँव की पहली चिन्ता होनी चाहिए। भोजन-वस्त्र के अलावा उन्होंने ग्राम-स्वावलंबन की और बातें भी बतायी हैं, जैसे पशुओं के लिए चरागाह; प्रौढ़ों और बच्चों के लिए मनोरंजन और खेल का स्थान; अन्न, कपास और चारे से भूमि बचे तो व्यापारिक फ़स्लें, लेकिन गाँजा, तम्बाकू या अफ़ीम जैसी नशीली चीजें नहीं; गाँव की अपनी नाट्यशाला, स्कूल और सार्वजनिक हाल; शुद्ध पानी की व्यवस्था; अनिवार्य बुनियादी शिक्षा, प्रचलित नमूना नहीं। ऐसे गाँव में जहाँ तक संभव होगा अधिक-से-अधिक काम सहकारी पद्धति से चलेंगे। जात-पाँत या छुआछूत का भेदभाव नहीं रहेगा। गाँव अपनी सुरक्षा के लिए अपने ही नवजवानों में से बारी-बारी 'रक्षक' भी चुनेगा। यह सेवा अनिवार्य होगी। लेकिन गाँव का अंतिम अस्त्र सत्याग्रह होगा। सत्याग्रह और असहयोग की शक्ति से गाँव अपने हित और स्वतंत्रता की रक्षा करेगा।

इतना ही नहीं, गाँव अपने भीतरी प्रबंध में पूर्ण स्वतंत्र होगा। गांधीजी की ग्राम-योजना में गाँव की 'सरकार'—सरकार यानी सुव्यवस्था का तंत्र—पाँच व्यक्तियों की पंचायत या समिति के हाथ में रहेगी, जो हर साल गाँव के निर्धारित योग्यता रखने वाले सभी बालिग़ नर-नारियों द्वारा चुने जायँगे। शारीरिक श्रम से प्रत्यक्ष उत्पादन-कार्य वोट की मुख्य योग्यता मानी जायगी। इस प्रकार बनी समिति को नियम बनाने, न्याय करने और व्यवस्था चलाने का पूरा अधिकार होगा।

गांधीजी मानते थे कि इतना होने पर ही पूरा और सच्चा ग्राम-स्वराज्य होगा। बिना ग्राम-स्वराज्य के अहिंसक लोकराज्य संभव नहीं होगा और बिना अहिंसा के व्यक्ति के व्यक्तित्व की रक्षा नहीं होगी।

प्रश्न : ३. यह बात तो हुई, लेकिन यह बताइये कि गाँव के बाहर की व्यवस्था कैसी होगी ? क्या एक गाँव का दूसरे गाँव से सम्बन्ध नहीं रहेगा ?

उत्तर : सम्बन्ध ! सम्बन्ध तो रहेगा ही। व्यक्ति का विकास गाँव में, गाँव का क्षेत्र में, क्षेत्र का जिले में, जिले का प्रांत में, प्रान्त का देश में और अन्त में देश का विकास दुनिया में होगा। विनोबा के शब्दों में स्वावलम्बन का आधार ही है परस्परावलंबन। स्वावलंबन जहाँ सम्भव हो, परस्परावलंबन जहाँ आवश्यक हो, यही सिद्धान्त है। आर्थिक और सांस्कृतिक, दोनों क्षेत्रों में परस्परावलम्बन होगा। इसी ढंग से ग्राम-समितियों से अप्रत्यक्ष चुनाव के आधार पर जिला-समितियाँ, फिर उनसे प्रांतीय समितियाँ, और अन्त में समस्त देश की एक राष्ट्रीय समिति बनेगी। व्यवस्था की इस कल्पना में मुख्य बात यह है कि उत्तरदायित्व और कर्तव्य, दोनों का स्रोत गाँव में ही रहेगा। गाँववाले स्वयं अपने जीवन के कर्ता-धर्ता होंगे। ऊपर की समितियों के पास नीचे की समितियों के दिये हुए अधिकार और कृत्य रहेंगे।

अब आप समझ गये होंगे कि सर्वोदय की ग्राम-समितियाँ आज की ग्राम-समितियों से कितनी भिन्न होंगी। पूरी व्यवस्था ही भिन्न होगी। आज का सारा ढाँचा सत्ता, शक्ति, सम्पत्ति और बुद्धि के केन्द्र पर कायम है; सर्वोदय का सिद्धान्त ही है उनका पूर्ण विकेन्द्रीकरण हो।

प्रश्न : ४. हाँ, भिन्नता तो स्पष्ट है। लेकिन यह भी स्पष्ट है कि सर्वोदय की कल्पना की व्यवस्था लाने के लिए आज की व्यवस्था में बुनियादी सुधार करने होंगे। क्या आप बतायेंगे कि कौन-कौन मुख्य सुधार करने पड़ेंगे ?

उत्तर : 'सुधार' शब्द से भ्रम पैदा होता है। आज जो स्थिति है, उसमें केवल सुधार से काम नहीं चलेगा। जड़ से क्रान्ति करनी पड़ेगी। जीवन के मूल्यों को बदलना पड़ेगा। व्यक्ति की प्रेरणा और समाज का प्रबन्ध, दोनों नये चाहिए। तो, आप यह समझ लें कि सर्वोदय-क्रांति की पहली शर्त है—'ग्रामीकरण'। ग्रामीकरण का अर्थ यह है कि उत्पादन और उपभोग की दृष्टि से पूरा गाँव एक इकाई माना जाय। दूसरे शब्दों में गाँव का परिवारीकरण हो जाय। ऐसा होते ही भूमि या उत्पादन के अन्य मुख्य साधन व्यक्तिगत न होकर पूरे ग्राम-परिवार के हो जायँगे। आज समाज में जो मालिकी है, चाहे वह सम्पत्ति की हो, चाहे सत्ता की, जब तक वह नहीं मिटेगी, तब तक नये समाज का जन्म नहीं हो सकता। इसीलिए गांधीजी ने कहा था कि चरखा अहिंसा का प्रतीक है, इसलिए कि चरखा नयी स्वावलंबी उत्पादन-पद्धति और नये मानवीय सम्बन्धों का प्रतीक है। आप सोचें, आज स्वार्थों का जैसा संघर्ष है, विषमता जैसी गहरी और व्यापक है, उसके होते हुए सहयोग-वृत्ति कैसे पैदा होगी ? ऐसे वातावरण में तो मनुष्य का पुरुषार्थ इसी में लगता है कि वह कैसे एक-दूसरे को गिराये। अच्छी प्रवृत्ति पैदा हो, इसके लिए पहले अच्छी परिस्थिति पैदा करनी होगी।

प्रश्न : ५. ग्रामीकरण को ज़रा और स्पष्ट कीजिये। ग्रामीकरण में खेती और उद्योगों की व्यवस्था कैसे होगी ?

उत्तर : देखिये, विनोबाजी आज जो भूदान-यज्ञ-आन्दोलन चला रहे हैं, उसका ध्येय है ग्रामराज। ग्रामराज की बुनियाद है ग्रामीकरण। सबसे पहले भूमि की मालिकी खत्म करनी है। उड़ीसा के कोरापुट जिले के १२५२ गाँवों में भूमि की मालिकी मिट चुकी है। वह ग्राम-परिवार की हो गयी है। मालिकी खत्म होने पर गाँव के कुल परिवारों में समता के आधार पर यानी प्रति परिवार जितने सदस्य हैं, उनका ग्राम-परिवार में जितना हिस्सा आता है, उसके अनुसार बँटी है। परिवार को भूमि जोतने-बोने के लिए मिली है, मालिकी कमाई खाने के लिए नहीं। इसमें सिद्धान्त यह हुआ कि भूमि गाँव की, खेती परिवार की। निश्चित अवधि में भूमि का पुनर्वितरण होता रहेगा, ताकि भूमि के मामले में विषमता न रहे। इस तरह ग्रामीकरण में खेती पारिवारिक होगी; लेकिन खेती की, या अन्य उत्पादन-कार्यों की प्रक्रियाओं में परस्पर सहायता (mutual aid) होगी। सिंचाई तथा अन्य बड़े काम, जैसे गाँव का व्यापार, शिक्षा, स्वास्थ्य, सुरक्षा आदि तो सहकारिता के ही आधार पर चलेंगे।

खेती सर्वोदय की जीवन-योजना का आधार है। जो खेती करना चाहेगा, उसे खेत अवश्य मिलेगा। खेती के आलावा हर परिवार में कई उद्योग (multicraft families) चलेंगे। बुनाई, बढ़ईगिरी, चमड़े का काम ऐसे उद्योग हैं, जो पूरी कमाई के धन्धे बन सकते हैं। हम उद्योगों को तीनभागों में विभाजित

करते हैं—गृह-उद्योग, ग्राम-उद्योग, राष्ट्र-उद्योग। राष्ट्र-उद्योग जिले, प्रांत या अखिल भारतीय स्तर पर केन्द्रित होंगे, लेकिन केन्द्रित उद्योगों के स्थान आज की तरह केवल औद्योगिक केन्द्र न रह कर शिक्षा और संस्कृति के केन्द्र बन जायँगे। उनमें काम करने वाले लोग मजदूर नहीं रह जायँगे, बल्कि विद्यार्थी और शिक्षक होंगे। इस तरह मालिक-मज़दूर का सम्बन्ध हमेशा के लिए मिटा दिया जायगा। सर्वोदय शिक्षित, सुसंस्कृत उत्पादकों का समाज बनाना चाहता है, मजदूरों का नहीं।

ग्राम-उद्योगों में आग्रह इस बात का है कि गाँव में पैदा होने वाले कच्चे माल का तैयार माल गाँव में ही बने और गाँव के कारोबार के लिए गाँव की एक सम्मिलित 'दूकान' (धर्मगोलक) हो। 'धर्मगोलक' के द्वारा ग्राम-समिति व्यापार, खेती-सुधार, उद्योग-संघटन आदि सब करेगी। ग्राम-समिति के ही ढंग पर क्षेत्रीय या अन्य ऊपर की समितियाँ अपने-अपने क्षेत्र में आवश्यक काम करेंगी। ऊपर की समितियों का मुख्य काम मेल-मिलाने (co-ordination) का होगा।

प्रश्न : ६. तो, आप इस सब ग्राम-व्यवस्था का भार ग्राम-समिति पर सौंपेंगे और उसका चुनाव होगा। क्या चुनाव की स्थिति में गाँव संघर्ष से बच सकेगा ?

उत्तर : हाँ, बचेगा। सम्पत्ति की मालिकी समाप्त होने पर जब स्वार्थों का संघर्ष नहीं रहेगा और हर परिवार को अपने श्रम की कमाई खानी पड़ेगी, भाग्य या बुद्धि की नहीं, तो हितों की एकता पैदा होगी। ग्रामीकरण की परिस्थिति में अपने-अपने अस्तित्व के हित में परस्पर-सहयोग की प्रवृत्ति पैदा होकर रहेगी। जैसे आज का संघर्ष और छीना-झपटी जीवन-रक्षा के लिए है, उसी तरह कल का सहयोग जीवन की रक्षा और उसके विकास के लिए होगा। फिर, गांधीजी की 'नयी तालीम' (आज की बुनियादी शिक्षा नहीं) के द्वारा उत्पादन-कुशलता के साथ-साथ संस्कारों का परिष्कार भी तो होता रहेगा। ऐसे नये वातावरण में ग्राम-समिति के—हम लोग ग्रामोदय समिति कहते हैं—निर्णय सर्व-सम्मति या सर्व-सहमति से होंगे। समिति के सदस्यों का चुनाव सर्व-सम्मति से ही होगा, भले ही सदस्यों की संख्या कम हो जाय। इस तरह चुनाव के 'लड़े जाने' का सवाल ही नहीं पैदा होगा।

प्रश्न : ७ अंत अब में यह बताइये कि ऐसा समाज बनाने की दिशा में सर्वोदय का तात्कालिक कार्यक्रम क्या है।

उत्तर : भूदान-यज्ञ और ग्रामोद्योग-आंदोलन। विचार-प्रचार द्वारा ग्राम-भावना जगाना; ग्रामोदय-समिति बना कर ग्राम-सहकार पैदा करना; उद्योग और श्रम के आधार पर ग्राम-निर्माण करना।

जिन गाँवों में हमारा काम होता है, वहाँ हम उत्पादन-वृद्धि, शोषणमुक्ति और शिक्षा-प्रसार, इन तीन पहलुओं पर ध्यान रखते हैं।

(आकाशवाणी, पटना के सौजन्य से)

भीषण अन्याय

जनसाधारण जिस मुख्य अन्याय का शिकार है, वह राजनीतिक सुधारों द्वारा नहीं मिटाया जा सकता। वह अन्याय यह है कि जिस जमीन के टुकड़े पर मनुष्य पैदा होता है, उसका वह इस्तेमाल नहीं कर सकता, हालाँकि कुदरती तौर पर उसको यह हक हासिल होना चाहिए। इस अन्याय की जघन्यता और दुष्टता को समझने के लिए यह अनुभव करना जरूरी है कि भू-स्वामियों की ओर से निरंतर होने वाला यह अत्याचार जब तक बंद न होगा, तब तक किसी भी राजनीतिक सुधार द्वारा जनता को आजादी नसीब नहीं हो सकती, उसका कल्याण नहीं हो सकता।

मनुष्य क्या है ? सबसे पहले वह एक जानवर है, जमीन का जानवर है, जो जमीन के बिना जिंदा नहीं रह सकता। मनुष्य जो कुछ पैदा करता है, जमीन से ही। यदि हम गहराई से विचार करें, तो हमको ज्ञात होगा कि चंद लोगों के अधिकार में जमीन कैसे रह सकती है।

भूमि पर व्यक्तिगत अधिकार की बुराई और अन्याय की ओर हजारों वर्ष पूर्व विचारवान पुरुषों ने ध्यान दिलाया।

जमीन निजी संपत्ति नहीं हो सकती, यह सत्य आधुनिक जीवन के वास्तविक अनुभवों से स्पष्ट हो चुका है; फिर भी जमीन पर व्यक्तिगत स्वामित्व स्वीकार किया जाता है। उसके बारे में सोचा ही न जाय, सत्य की अवहेलना की जाय, अपने आप को व्यस्त रखा जाय, आज के सभ्य देशों में यही किया जा रहा है।

(प्रेषक—गोविंद रेड्डी) —टॉलस्टॉय

निष्काम सेवा की आवश्यकता

(विनोबा)

आज देश में निष्काम सेवा करीब-करीब शून्य है। निष्काम-सेवा, याने ऐसी सेवा जिसमें अपने निजी लाभ की इच्छा न हो, अपने पक्ष के लाभ की भी इच्छा न हो और प्रतिष्ठा की भी बात न हो। स्वराज्य-प्राप्ति के पहले निष्काम सेवा का लोगों को कुछ अभ्यास था। उन दिनों कांग्रेस में जो लोग काम करते थे, उनमें से कई लोग केवल स्वराज्य की भावना से, निष्कामता से काम करते थे। रचनात्मक काम करने वाले भी गरीबों की सेवा निष्काम बुद्धि से करते थे। स्वराज्य-प्राप्ति के बाद कुल देश बदल गया। लोग अनेक राजनैतिक प्रान्तों में बँट गये। कुछ सेवक सरकार के अंदर दाखिल हो गये। रचनात्मक कार्यकर्ता भी स्वराज्य-प्राप्ति के बाद सरकार का मुँह ताकने लगे। ऐसे लोग पहले सरकारी मदद की अपेक्षा नहीं करते थे। लेकिन आज सरकार की योजना में कुछ रचनात्मक कार्यकर्ता दाखिल हुए हैं। वहाँ उनको अनेक प्रकार की सहूलियतें मिलने लगीं। इस हालत में निष्काम सेवा करने वालों की संख्या अंगुलियों पर गिनी जा सकती है।

चित्तशुद्धि के बिना निष्काम सेवा असम्भव

जो लोग राजनीतिक पक्षों में बँट गये हैं, उनकी हालत यह है कि उनमें से कुछ लोग पद लिये हुए हैं, कुछ म्युनिसिपलिटी, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड आदि में गये, कुछ काँग्रेस-संस्था के अध्यक्ष, मंत्री आदि बने। इन दिनों कांग्रेस के अध्यक्ष आदि के हाथ में भी बहुत सत्ता रहती है, क्योंकि आज कांग्रेस राज्यकर्ता संस्था है, पहले वह वनवासी संस्था थी। इसलिए जो कांग्रेस के सदस्य बनते थे, उन्हें काफी त्याग करना पड़ता था। आज उस संस्था में दाखिल होने से न त्याग की आवश्यकता है, न उसका मौका ही मिलता है; बल्कि उससे कुछ लाभ ही हो सकता है। पहले चार आना देकर कांग्रेस का सदस्य बनने से भी सरकार के खिलाफ-खड़ा होना पड़ता था। परंतु आज काँग्रेस में कई लोगों की भीड़ हुई है और उनके बीच झगड़े चलते हैं, होड़ भी लगी रहती है। ऐसी हालत में निष्काम सेवक कौन होंगे ? कुछ तो होंगे ही। जो लोग दूसरे राजनीतिक पक्षों में काम करते हैं, वे भी सत्ता के अभिलाषी हैं और उनका सारा ध्यान इसी में रहता है कि कांग्रेस के या सरकार के काम में कहाँ त्रुटियाँ हैं। इस तरह दूसरों की गलतियाँ गिनने वाला अपना चित्त शुद्ध नहीं रख सकता; और जहाँ चित्तशुद्धि का अभाव आया, वहाँ निष्काम सेवा कहाँ से होगी।

सेवा के नाम पर सौदा

निष्काम सेवा ही सच्ची सेवा है। बाकी सेवा एक प्रकार का सौदा है। किसीने जेल में कई साल बिताये, तो वह कहता है, हमें भी कुछ मिलना चाहिए। किसीने भूदान में कुछ त्याग किया, तो वह भी कहता है कि हमें कुछ मिलना चाहिए। अभी काँग्रेस ने जाहिर किया है कि जिन्होंने कुछ काम किया है, वे अपने काम का हिसाब पेश करें और उसके अनुसार उन्हें कुछ पद आदि मिलेगा। क्या कोई माँ अपने बच्चे की सेवा की कोई डायरी लिख रखती है ? वह समझती है कि यह सेवा मेरा कर्तव्य है। फिर भी माँ की सेवा निष्काम सेवा नहीं कही जा सकती है, क्योंकि उसमें भी काफी वासना पड़ी रहती है। कुछ लोग अपने काम की रिपोर्ट पेश करेंगे कि हमने इतने-इतने दिन काम किया, इसलिए हम चुने जायँ। उन्हें वैसी अपेक्षा रखने का अधिकार भी है, लेकिन उसमें निष्कामता कहाँ रही ? वह शुद्ध सेवा नहीं, वह तो सौदा हो गया।

राज्य एवं शक्ति से धर्म-प्रचार असम्भव

आज की हालत में जनशक्ति पर श्रद्धा और जनसेवा पर विश्वास बहुत ही कम दीखता है। राजनीतिक पक्षों में काम करने वाले मानते हैं कि हम सेवा करेंगे, तभी लोग हमें चुनेंगे और तभी हमारे हाथ में सत्ता आयगी। इसलिए वह सेवा सत्ता की दासी है। लोक-जीवन में सुधार, परिवर्तन, लोगों में क्रान्ति लाना आदि काम सरकारी शक्ति से कभी नहीं हो सकता। अगर सरकारी शक्ति से जनक्रान्ति होना शक्य था, तो बुद्ध भगवान् के हाथ में जो राज्य था, उसे वे क्यों छोड़ते ? इन दिनों लोग बुद्ध भगवान् की नहीं, बल्कि अशोक की मिसाल देते हैं। वे कहते हैं कि अशोक का परिवर्तन हुआ और उसने धर्मप्रचार किया, तो फिर राज्यशक्ति से धर्मप्रचार हुआ न ? हम कहना चाहते हैं कि वे लोग इतिहास का जरा भी ज्ञान नहीं रखते। जब से बुद्ध धर्म को सरकारी शक्ति का बल मिला, तब से बुद्ध धर्म के हिन्दुस्तान से उखड़ने की तैयारी हुई। जब से ईसाई धर्म को कॉंस्टेनटाइन के

बाद राजसत्ता का आधार मिला, तब से ईसाई धर्म नाम-मात्र का रहा और ईसा के पहले अनुयायी जैसे शुद्ध धर्म का आचरण करते थे, उसका लोप हुआ, चर्च बना और ढोंग पैदा हुआ।

आचरणशून्य धर्म के नाम पर झगड़ा

आज दुनिया में गिनती के लिए तो हजारों शैव, वैष्णव, जैन, लाखों हिन्दू, ईसाई हैं, लेकिन उनका आचरण क्या है? ईसा ने कहा था कि किसीने तुम्हारे गाल पर तमाचा मारा, तो दूसरा गाल सामने करो। इसका आचरण कौन कर रहा है? वही हालत इस्लाम की है। अंबेडकर के साथ दो लाख लोग बौद्ध बने, तो क्या ऐसे धर्मान्तर से बुद्ध भगवान् को संतोष होता होगा? क्या धर्म कोई खेल है कि लाख-लाख लोग एकदम, दूसरे धर्म में शरीक हों? आचरण कुछ नहीं और धर्म के नाम से झगड़े चलते हैं। इसलिए जब से राजसत्ता धर्म के साथ जुड़ गयी, तब से धर्म की अत्यंत हानि हुई है। इसका परिणाम यह हुआ है कि आज हजारों, लाखों लोग अपने को धार्मिक कहलाने के बजाय 'नास्तिक' कहलाना पसंद करते हैं। इसलिए राजसत्ता के जरिये सद्विचार या सद्धर्म फैल सकता है, यह कल्पना ही मन से निकाल दीजिये, बल्कि अगर सच्चे अर्थ में राजसत्ता धर्म के साथ जुड़ गयी, तो धर्म राजसत्ता को ही खत्म करेगा। दोनों एकसाथ नहीं रह सकेंगे। दूसरों पर सत्ता चलाना, यह धर्मविचार नहीं है। सबकी सेवा करना, प्रेम से समझाना, यही धर्मविचार है।

दो मिसालें : बुद्ध और नव बाबू

जो धर्म दुनिया में और विचार में क्रान्ति लाने वाला है, वह राजसत्ता के जरिये नहीं फैलेगा। इसीलिए बुद्ध भगवान् को राज्य छोड़ना पड़ा। ऐसी ही पुरानी दूसरी भी मिसालें हैं। लेकिन अभी की मिसाल लीजिये। नव बाबू (उड़ीसा के भूतपूर्व मुख्य मंत्री श्री नवकृष्ण चौधरी) ने राजसत्ता के जरिये सेवा करने की काफी कोशिश की। आखिर इन दो सालों से वे उससे छुटकारा पाने के लिए तरसते थे। लेकिन उनका छुटकारा नहीं हो रहा था। अब वे छूट गये हैं। यह छोटी मिसाल है और बुद्ध भगवान् की बड़ी मिसाल है, लेकिन दोनों का तात्पर्य एक ही है। दोनों के हाथ में राजसत्ता थी। लेकिन उन्होंने देखा कि सत्ता के जरिये अधिक रक्षण, आज की परिस्थिति कायम रखने में होता है। समाज आज जिस स्थिति में है, उस स्थिति को कायम रख कर अगर कुछ सेवा करनी होती है; तो सरकार के जरिये होती है। उससे समाज कुछ थोड़ा-सा आगे भी बढ़ सकता है, लेकिन वह चींटी के जैसा बढ़ता है। इसलिए सत्ता के जरिये समाज-रचना में कोई क्रान्तिकारक बदल नहीं हो सकता। लोगों में जाकर उनके मन की शुद्धि का कोई कार्यक्रम किये बिना जनसमाज आगे नहीं बढ़ता है।

राजाओं का नहीं, सत्पुरुषों का असर

हिन्दुस्तान का कुल इतिहास देखने से यह मालूम होता है कि हिन्दुस्तान का समाज जहाँ-जहाँ आगे बढ़ा है, वहाँ-वहाँ सत्पुरुषों के ही जरिये आगे बढ़ा है। बुद्ध और महावीर का जो असर आज भी भारत पर दीखता है, वह उनके जमाने के किसी भी राजा का कहीं भी नहीं दीखता। कबीर और तुलसीदास का जो परिणाम आज उत्तरप्रदेश पर हुआ है, वह उत्तरप्रदेश के किसी भी राजा का नहीं हुआ है। चैतन्य महाप्रभु, रामकृष्ण परमहंस और रवीन्द्रनाथ का जो असर आज बंगाल पर है, वह बंगाल के किसी भी राजा का नहीं है। शंकर, रामानुज, माणिकवाचकम् और नम्मालवार का तमिलनाड पर आज तक जो असर है, वह न किसी पांड्य का है, न पल्लव राजा का है, न चौल राजा का है। यहाँ पर सब लोग भस्म लगाते हैं, क्या वह किसी चौल या पांड्य राजा की आज्ञा से? लोग अपने जीवन में इतना त्याग करते हैं, वह किसके नाम पर करते हैं? विवाह-संस्था जैसी उत्तम संस्था बनायी है, वह किसने बनायी है? माताएँ बच्चों की परवरिश करती हैं, तो किस राजा के या किस सरकार के हुक्म से करती हैं? यहाँ पर 'तिरुकुरळ' पढ़ा जाता है, तिरुवाचकम् का रटन किया जाता है, वह क्या किसी यूनिवर्सिटी की आज्ञा से होता है, या किसी म्युनिसिपलिटी या डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की आज्ञा से होता है? आज लोगों की जो विवेकबुद्धि बनी है, वह किसने बनायी है? आज इतना दान दिया जाता है, वह किसकी आज्ञा से दिया जाता है? इतना सारा तप किया जाता है, उपवास, एकादशी, रोजा किया जाता है, वह किसकी आज्ञा से किया जाता है? हिन्दुस्तान में बहुत सारे लोग स्नान किये बगैर दोपहर का भोजन नहीं करते, वह किसकी आज्ञा से करते हैं?

विवेक बुद्धि पर राजाओं का प्रभाव नहीं

आप क्या समझते हैं कि पिनलकोड में चोरी के लिए सजा है, इसलिए इतने सारे लोग चोरी नहीं करते? मान लीजिये कि कल पुलिस, कोर्ट, जेल आदि कुछ नहीं रहेगा, तो क्या बाबा भूदान का काम छोड़ कर चोरी करना शुरू करेगा? चोरी के लिए सजा न हो, तो आपमें से कितने लोग चोरी करना शुरू करेंगे? चोरी नहीं करनी चाहिए, ऐसी हमारी विवेक बुद्धि क्या किसी राजा ने बनायी है? राजा क्या बना सकते थे, वे खुद ही चोर थे। वे डाका डालने वाले थे, लोगों को लूटने वाले थे, लोगों पर सत्ता चलाने वाले थे। यहाँ पर ईस्ट इंडिया कंपनी का राज्य चला, उसमें क्लाइव, वॉरेन् हेस्टिंग्ज़ आदि क्या महापुरुष हो गये? इंग्लैंड की पार्लमेन्ट में हेस्टिंग्ज़ पर केस चला था, उसमें बर्क ने जो दोषारोपण किया था, वह हम पढ़ते हैं, तो मालूम होता है कि हेस्टिंग्ज़ वगैरा कैसे बदमाश थे। लेकिन हिन्दुस्तान में उनकी सत्ता चली और वे राज्यकर्ता बने।

स्वराज्य के लिए जनशक्ति आवश्यक

अब अंग्रेजों के हाथ से हमारे हाथ में सत्ता आयी है और हम राज्यकर्ता बने हैं। हमारे शास्त्रों में लिखा है कि "राज्यान्ते नरकप्राप्तिः"—राज्य-समाप्ति पर नरक-प्राप्ति होती है। लोग पूछेंगे कि क्या फिर स्वराज्य नहीं चलाना चाहिए। हम कहते हैं कि स्वराज्य जरूर चलाना चाहिए, पर राज्य नहीं चलाना चाहिए। वेद का ऋषि कहता है—"यतेमहि स्वराज्ये"—हम स्वराज्य के लिए प्रयत्न करेंगे। शास्त्रों में यह भी लिख रखा है कि "न त्वहं कामये राज्यम्"—मैं राज्य नहीं चाहता हूँ, मैं स्वराज्य चाहता हूँ। दिल्ली से जो चलता है, उसे 'राज्य' कहते हैं, चाहे वह अपने लोगों का ही हो। मुझे चाहे भूखा रहना पड़े, लेकिन मैं चोरी नहीं करूँगा, इसका नाम है 'स्वराज्य।' स्वराज्य का अर्थ है अपना खुद का अपने पर राज्य। इस तरह से जब सब लोगों में अपने पर काबू रखने की शक्ति पैदा होगी और उन्हें अपने कर्तव्य का भान होगा, उनको वह ज्ञान होगा, तब स्वराज्य आयेगा। तब तक राज्य चलेगा, फिर चाहे वह हिन्दीवालों का राज्य हो या तमिलवालों का राज्य हो, वह स्वराज्य नहीं होगा। समझने की बात है कि हमें काम स्वराज्य का करना है। उसके लिए जनशक्ति पैदा करनी है, लोगों के हृदय में आत्मशक्ति का भान पैदा करना है। अपने गाँव का कारोबार हम चला सकते हैं, कोई भी बाहर की सत्ता हमें रोक नहीं सकती, ऐसी ताकत पैदा होनी चाहिए।

बाबा को 'स्वराज्य' कैसे मिला?

मैं अपने आप पर अपनी खुद की सत्ता चला सकता हूँ। बाबा ने तय किया है कि वह पैदल घूमेगा। रोज पचासों रेल (ट्रेन) फरफर करती हैं और कई दफा बाबा को उनका दर्शन होता है। बाबा का कोई भाई कलकत्ते में पड़ा है और रेल में बैठ जाय, तो दो दिन में उसे मिलने के लिए जा सकता है। लेकिन कोई भी रेल बाबा को अपने में बिठा नहीं सकती। बाबा का अपने विचारों पर काबू है। बाबा समझता है कि वह जो संकल्प करेगा, उसके खिलाफ दुनिया की कोई ताकत काम नहीं करेगी। बाबा दूसरों पर दबाव डालने का संकल्प नहीं करेगा, वह अपने पर ही दबाव डालने का संकल्प करेगा। एक जमाना था, जब बाबा का अपने पर काबू नहीं था। अपने पर काबू पाने के लिए बाबा को अभ्यास करना पड़ा। जिस समय उसकी अपने पर सत्ता नहीं थी, उस समय दूसरों की सत्ता उस पर चलती थी, परंतु जब से उसकी अपने पर सत्ता चलने लगी, तब से उसे 'स्वराज्य' मिला।

स्वराज्य के दो लक्षण

दुनिया की दूसरी कोई भी सत्ता अपने पर न चलने देना, यह 'स्वराज्य' का एक लक्षण है और दूसरे किसी पर अपनी सत्ता न चलाना, यह 'स्वराज्य' का दूसरा लक्षण है। बाबा किसी पर अपनी सत्ता नहीं चलाता है। हम पर किसी की सत्ता नहीं चलेगी और हम दूसरे किसी पर अपनी सत्ता नहीं चलायेंगे, ये दोनों बातें मिल कर ही स्वराज्य होता है। यह सारा काम सरकारी शक्ति से नहीं होगा, लोकमानस में परिवर्तन लाने से ही होगा। उसके लिए हृदय-शुद्धि की जरूरत होती है। हृदय-शुद्धि लाने का कार्यक्रम जनता में जाकर करना होगा। उसके वास्ते यज्ञ, दान, तप आदि सब है।

भूदान-यज्ञ आदि कार्यक्रम की जो बुनियाद है, वह मैंने आज आपके सामने रखी। इस काम की जिन्हें प्रेरणा मिलेगी और जो इसे अपना जीवन अर्पण करेंगे, उन्हीं के जरिये यह काम फैलेगा।

(पलयकोटाई, कोइम्बतूर, २९-१०-५६)

भूदान-यज्ञ

३० नवंबर सन् १९५६

बारीश में भगवद् प्रार्थना

(वीनोबा)

आजकल हमारी संस्थाओं में अेक रीवाज पड़ गया है की अपने कार्य की समाप्ती में भगवान् की प्रार्थना की जाय, तो भी वह बहुत अच्छा है, परंतु अुसमें रीवाज से कुछ अधीक रहस्य भरा है। हमने अपनी यात्राकाल में अनुभव कीया की प्रार्थना अगर हमने नहीं की होती, तो यात्रा में हमारी बहुत सारी ताकत क्षीण हो जाती। बीच में हम बीमार पड़े, वह अेक लज्जाजनक बात हमारे लीअे हो गयी। परंतु हमारे मन पर अैसा असर नहीं है की बारीश में भींगते हुअे प्रार्थना करने का मौका आया और अुसके परीणामस्वरूप वह बीमारी हुअी। बल्की हमारा अनुभव तो यह कहता है की प्रार्थना के समय में आत्मा का जो वर्णन शास्त्रकार करते हैं, अुसका प्रत्यक्ष चमत्कार दर्शन को मीलता है। अैसे अगर श्लोन के लीअे कमजोर हालत में हम बारीश में रहते हैं, तो संभव है की शरीर बीगड़ेगा—यद्यपी बारीश में श्लोन का भी लाभ है, अैसा हम समझते हैं। परंतु हमारे जैसे कमजोर शरीर वाले मनुष्यों को बारीश में श्लोन का लाभ हम नहीं मानेंगे। लेकीन बारीश के नीचे प्रार्थना करने में कीसी तरह से मनुष्य को नुकसान होता है, यह बात हमारा मन बीलकुल ही कबूल नहीं करता है, बल्की आत्मा का जो वर्णन कीया गया है की आत्मा भींगता नहीं है, अुसका प्रत्यक्ष अनुभव मनुष्य को बारीश में आता है। तमील साहीत्य का हम कअी दफा जीक्र करते हैं की यहां के साहीत्य में बारीश के लीअे अत्यंत आदर बताया है। वैसे दुनीया भर के साहीत्य में बारीश की महीमा बहुत गायी है। परंतु तमील साहीत्य में स्त्रीयां बारीश का गीत गाती हैं और सबको बुलाती हैं की चलो आओ, बारीश में भगवद् प्रार्थना करेंगे। अुससे हमको अेक वीशेष अनुभूती हुअी। आज बारीश हो रही थी, तो कुछ लोगों ने हमको बचाना चाहा की हम बारीश में यहां न आयें। वह तो अुन्होंने दयाबुद्धी से प्रार्थना की, परंतु हमारा अनुभव यह है की बारीश में प्रार्थना करना, तो वज्रकवच के समान मनुष्य का रक्षण करता है—क्योंकी वह जो वर्णन आता है की "सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः, सहस्रपात्", अुसीका अनुभव हमें अेक तो सूर्यकीरणों से होता है और दूसरा बारीश के स्पर्श से होता है। भगवान् का 'चतुर्भुज' आदी वर्णन कीया जाता है, लेकीन यह जो सहस्र आलींगन का अनुभव है, वह तो या तो सूर्यकीरणों में या चंद्रकीरणों में या तो बारीश में होता है।

(पळनी, मदुरा, १९-११-'५६)

सर्वोदय की दृष्टि :

संयोजन की बुनियाद बदलिये

एक विज्ञानवादी मित्र उस दिन कहने लगे कि संसार में युद्धवाद की बदौलत वैज्ञानिक आविष्कारों का विकास हुआ है। पिछले दो जागतिक महायुद्ध न हुए होते तो अणु-परमाणुओं का पृथक्करण करने की प्रेरणा वैज्ञानिकों को न होती और संसार एक अपूर्व वैज्ञानिक आविष्कार से वंचित रह जाता। इसलिए यह कहना गलत है कि युद्ध-वृत्ति से मानवीय प्रगति नहीं होती।

सुनने में यह आपत्ति बहुत माकूल मालूम होती है। लेकिन उसमें संसार की आज की प्रत्यक्ष परिस्थिति की तरफ ध्यान नहीं दिया गया है। संसार में आज जो लोग लड़ाई की तैयारी कर रहे हैं और आण्विक अस्त्रों का उत्तरोत्तर विकास कर रहे हैं, वे लोग भी अब युद्धवादी नहीं रह गये। युद्ध का प्रतिपादन मानवीय प्रगति के साधन के रूप में आज कोई नहीं करता। अब तो सब यही कह रहे हैं कि युद्ध-वादियों की खुराफातों को रोकने के लिए हमें अस्त्रों की तरक्की करनी पड़ रही है। युद्ध में समाज की तरक्की के तत्त्व तभी तक छिपे हुए रहते हैं, जब तक उससे मानवीय ज्ञान या सार्वजनिक कल्याण का विकास होता है। आज प्रेरणा युद्ध की नहीं है, युद्ध के भय की है। इसलिए हमें इस भ्रम में नहीं रहना चाहिए कि अब शस्त्रास्त्रों के संग्रह तथा प्रयोग में मानवीय प्रगति की कोई संभावनाएँ छिपी हुई हैं।

जो लोग यह मानते हैं कि दो परस्पर-विरोधी तत्त्वों की टक्कर से प्रगति होती है, उनकी यह भी मान्यता है कि किसी समय पूँजीवाद में भी प्रगति के तत्त्व थे। जब तक पूँजीवाद की भूमिका प्रागतिक थी तभी तक वह पनपा। अब उसमें से प्रगति की सारी सम्भावनाएँ सनाप्त हो चुकी हैं। इसलिए संसार के सारे क्रान्ति-वादी पूँजीवाद का विरोध कर रहे हैं। हो सकता है कि किसी समय सैनिक वृत्ति और शस्त्र-कुशलता में मानवीय विकास के तत्त्व निहित रहे हैं, लेकिन आज जब कि शस्त्र-संग्रह के पीछे मुख्य प्रेरणा भय की है तब यह समझना कि उससे मनुष्य के व्यक्तित्व का या सामाजिक जीवन का विकास हो सकता है, सर्वथा अयुक्तिक है।

शस्त्रवाद के लिए जो बात लागू है, वही यंत्रवाद के लिए भी लागू होने का दिन तेजी से नजदीक आ रहा है। मनुष्य की निर्माण-कुशलता का विकास जब यंत्र की सहायता से होता है, तब यंत्र की मार्फत उसकी सांस्कृतिक उन्नति होती है। सिर्फ वैभव के साधन उसके गुणों का विकास नहीं कर सकते। जहाँ चीजों की कमी हो और मुहताजी के सबब से जीवन ही सूख जाने का डर हो वहाँ यंत्रों से चीजों की पैदावार और अन्न की उपज बढ़ाने की जरूरत होती है। लेकिन उपज बढ़ाने में अगर मनुष्य का पुरुषार्थ और उसकी कला का उपयोग न हुआ तो वह पराक्रम-शून्य बन जाता है। दुनिया में आज जितने यंत्र-विशारद हैं, उतने पुरुषार्थ-वान् और कलाकुशल व्यक्ति नहीं रह गये हैं। पुराने ज़माने के राजाओं की तरह यंत्राश्रित मानव वैभव-संपन्न बन सकता है, लेकिन अलाउद्दीन की लालटेन से उसकी सांस्कृतिक प्रगति हरगिज़ नहीं हो सकती। आज दुनिया में यांत्रिक प्रगति की प्रेरणा दो प्रभुत्ववादी गुटों की स्पर्धा में से आती है। पिछड़े हुए देशों पर अपना प्रभुत्व अधिक मात्रा में कौन जमा सकता है इसकी बाजी लग रही है। एक-दूसरे को मात करने की कोशिश में दोनों दल यांत्रिक साधनों का विकास कर रहे हैं। सारे क्रांतिवादियों की एकमुखी माँग यह है कि आर्थिक क्षेत्र में प्रगति की प्रेरणा सहयोगजन्य हो। प्रतियोगिता और स्पर्धा की गंध भी हमारी अर्थरचना में नहीं होनी चाहिए। आज युद्धवाद और आर्थिक सत्तावाद, दोनों हाथ में हाथ मिला कर कदम बढ़ा रहे हैं। युद्धवाद में से व्यक्तिगत वीरता और लोक-कल्याण की प्रेरणा नष्ट हो चुकी है और आन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक प्रतियोगिता में से भी सहयोग की तथा परस्परावलंबन की प्रेरणा हलके-हलके क्षीण हो रही है, ऐसी परिस्थिति में अब यांत्रिक प्रगति और औद्योगिक संयोजन को नयी बुनियादों पर रखना नितांत आवश्यक हो गया है।

इस तात्त्विक दृष्टिकोण के प्रकाश में हमें अपने राष्ट्रीय संयोजन की व्यावहारिक भूमिका का फिर से विचार करना होगा। उधर पश्चिम एशिया और पूर्व यूरोप में लड़ाई के आसार दिखायी देते ही हमें यह अंदेशा होने लगा है कि हमारी द्वितीय पंचवार्षिक योजना कैसे कार्यान्वित होगी? हमारे आयात और निर्यात का क्या होगा? इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि जो राष्ट्र केवल शस्त्रास्त्रों के प्रयोग में जागरूक तटस्थ नीति का अंगीकार करेगा, वह राष्ट्र केवल उतने से आज की जागतिक परिस्थिति को शांति की दिशा में मोड़ने में समर्थ नहीं होगा। लड़ाई के विषय में

जिस तरह जागरूक और पुरुषार्थपूर्ण तटस्थता आवश्यक है उसी प्रकार आर्थिक संयोजन में भी आन्तर्राष्ट्रीय मैत्री के आधार पर राष्ट्रीय स्वावलंबन की नीति आज की बहुत बड़ी आवश्यकता है। पुराने जमाने के जीर्णमतवादी अर्थशास्त्री जिस आर्थिक स्वयंपूर्णता का प्रतिपादन करते थे उसमें और यहाँ जिस आर्थिक स्वावलंबन का उल्लेख किया जा रहा है उसमें मूलभूत अंतर है। इस आर्थिक स्वावलंबन का उद्देश्य अपने देश को दुनिया से अलग रखना नहीं है। आज वह संभव भी नहीं है। इस आर्थिक स्वावलंबन का मुख्य उद्देश्य यह है कि दो या अनेक युद्धयमान राष्ट्रों की युद्ध-नीति के साथ हमारा आर्थिक संयोजन हमारी इच्छा के विरुद्ध उलझ न जाय। आन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में विकेन्द्रीकरण के अर्थशास्त्र का प्रयोग इसी आधार पर हो सकता है। उत्पादन दूसरे देशों में बाजार खोजने के लिए नहीं होगा। दूसरे देशों से चीजों की, या सिक्कों की अदल-बदल के लिए नहीं होगा। उत्पादन जीवन की आवश्यकताएँ और उपयुक्त आकांक्षाएँ पूरी करने के लिए होगा और जो कुछ बचेगा, वह भी संविभाग के लिए होगा, न कि विक्रय और विनिमय के लिए।

भिन्न-भिन्न वादों के नक्शों के मुताबिक साम्प्रदायिक आर्थिक संयोजन अब मानवीय मूल्यों की स्थापना नहीं कर सकता। इसके प्रत्यक्ष प्रमाण आज की परिस्थिति में हररोज उपस्थित हो रहे हैं। आवश्यकता आयात-निर्यात के नियंत्रण की तो है ही, परन्तु उससे कहीं अधिक आर्थिक संयोजन की बुनियादें ही बदलने की है। उपाय बीमारी की जड़ को काटने वाला होना चाहिए, सिर्फ बाहर की मलहमपट्टी से काम नहीं चलेगा।

—दादा धर्माधिकारी

ग्रैंडट्रंक एक्सप्रेस, १८-११-५६

गांधी-विचार का आचारात्मक स्वरूप

(अच्युतभाई देशपाण्डे)

'गांधीवाद' शब्द गांधीजी को और उनके सहयोगियों को पसन्द न था। संसार का एक नियम मान कर वे उसे बर्दाश्त कर लेते थे। लेकिन उस विषय में अपना मत वे स्पष्ट कर देते थे।

गांधीजी ने नया कुछ नहीं कहा है। पर जो कहा और किया वह इतना विकसन-क्षम है कि किसी भी बंधन में, किसी भी 'वाद' में वह समा नहीं सकता। वह विचार प्रवाही है। उस विचार-सरिता को गति मिलते रहना अभिप्रेत है।

स्वयंसिद्ध आध्यात्मिक मूल्यों को, नीतितत्त्वों को जीवन का आधार मान कर सामाजिक स्तर पर गांधीजी ने उसका प्रयोग किया। नीतितत्त्वों का सामाजिक प्रयोग गांधीजी के युग की आवश्यकता थी।

महात्माजी ने युग की समस्याओं के कुछ सामाजिक उपाय ढूँढ़ निकाले। उत्तरों की इन मणियों को पिरोने वाले धागे को हम 'गांधी-विचार' नाम देते हैं। कोई उसे 'गांधीवाद' या 'गांधी-दर्शन' भी कहते हैं। पर यह विकसन-शील दर्शन है। जीवन भर ही नहीं, मृत्यु में भी जिसका विकास हुआ, उसके दर्शन का प्रत्यक्ष स्वरूप आज की स्थिति में क्या होगा, यह कौन कैसे कहे? गांधीजी के सहयोगियों ने गांधीजी के बाद उनके नाम का कोई संघ चालू नहीं किया। जो कोई कुछ बोलता है, वह अपनी जिम्मेदारी पर बोलता है। ऐसा करके उसने अपने आप पर और गांधी-विचार पर भी बहुत बड़ा उपकार किया है।

गांधीजी सत्य और अहिंसा को अपने जीवन का आधार मानते थे। उन्होंने सत्य अहिंसादि ग्यारह व्रत अपनाये थे, फिर भी उनका संक्षेप "सत्य-अहिंसा" समास में हो सकता है। शेष गुण जीवन-विभाग के भिन्न-भिन्न स्वरूप हैं, ऐसा कहा जा सकता है। सत्य का अर्थ परमेश्वर, विश्व की नैतिक व्यवस्था, निर्भयता, यथार्थता, प्रतिज्ञा-पूर्ति एवं सदाचार आदि हो सकता है। अहिंसा सत्य तक पहुँचने का साधन मानी गयी है। दूसरी भाषाओं में इस शब्द का प्रतिशब्द है नहीं, ऐसा हम कह सकते हैं। 'प्रेम' शब्द पर बहुत बड़े परिमाण में कालिख चढ़ी होने से उसका उपयोग 'अहिंसा' शब्द के बदले करने में खतरा है। ईसा मसीह ने अपने जीवन-संदेश के लिए इसी शब्द का प्रयोग किया है। ईसा का वाक्य है—"पड़ोसी से प्रेम करो। वैरी से भी प्रेम करो। परस्पर प्रेम करो।" प्रार्थना के लिए भी इसका उपयोग होता है।

ईसा अपने इस दर्शन में से "पड़ोसी से प्रेम करो" सिद्धान्त का प्रयोग बहुत बड़े पैमाने पर कर सके। जनता के लिए वह प्रसाद उन्होंने छोड़ रखा। समाज उसे कुछ अमल में भी लाया। पर प्रेम के अन्य दो सिद्धांत बहुत आगे नहीं जा सके।

गांधीजी ने व्यापक सामाजिक स्तर पर, पहले दो सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप दिया और तीसरे सिद्धान्त को भी अमल में लाना शुरू किया था। परस्पर प्रेम करने का अर्थ यह है कि जिस-जिससे हमारा संपर्क हो, फिर वह पड़ोसी हो, शत्रु हो, कोई हो, उससे हम इतना प्रेम करें कि वह केवल हमसे ही नहीं, बल्कि अपने सम्पर्क में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति से प्रेम करने लगे। प्रेम के इस संपूर्ण सामाजिक प्रयोग की संभावनाओं को ढूँढ़ निकालने की और अमल में लाने की यह विरासत गांधीजी ने हमें दी है।

राजाजी ने कांचीपुरम् में वहाँ के शिव और विष्णु की ओर संकेत करते हुए कहा कि बापू के जीवन का अर्थ है परमेश्वर में अगाध निष्ठा, समर्पण तथा विषयों से वैराग्य या भोगलालसा की रोकथाम। आपने यह भी कहा कि इसकी आज बहुत ही आवश्यकता है। पंडित जवाहरलाल ने 'यू. एन. ओ.' को बापू का संदेश दिया—"वस्तु की अपेक्षा मानव को महान मानो।"

श्री राजेन्द्र बाबू ने दिल्ली के आंतर्राष्ट्रीय 'गांधी सेमिनार' में बापू का संदेश सुनाया—सरल विचारसरणि और सादा जीवन अर्थात् निर्भयता और संयम। विनोबाजी के एक सूत्र में बापू का संदेश बड़ी खूबी से आया है।

"वेद-वेदांत गीतानां, विनूना सार उद्धृतः।
ब्रह्म सत्यं जगत् स्फूर्तिः जीवनं सत्यशोधनं॥"

[वेद-वेदांत-गीता का विनू का सार है यह
ब्रह्म सत्य, जगत्स्फूर्ति, सत्य शोधन जीवन॥]

शंकराचार्य, ज्ञानेश्वर और गांधीजी—विनोबाजी के इन जीवन-मार्ग-दर्शकों की सूची यहाँ आयी है। गांधीजी का मूल पिंड विनोबाजी मुख्यतः कर्मयोगी मानते हैं, यह यहाँ स्पष्ट है। 'शोधन' शब्द का तात्विक दृष्टि से अर्थ लिया जाय, तो वह शोध होगा और व्यावहारिक दृष्टि से लिया जाय, तो नैतिक मूल्यों का उत्तरोत्तर नित्य नया विकास, उनका सामाजीकरण और व्यक्तिगत एवं सामाजिक 'भावना' में उसका रूपांतर, ऐसा करते-करते साधन-शुद्धि के निर्णय तक वह अर्थ ले जाया जा सकता है। शोधन और शुद्धि समानार्थक भी हैं ही। इसलिए सत्य को खोजना, शुद्ध करना आदि उसके अर्थ होते हैं, बापू के जीवन का यह प्रात्यक्षिक रूप है।

गांधीवाद के प्रात्यक्षिक स्वरूप की उपपत्ति संक्षेप में यह है—

(१) विज्ञान का विकास इतना हो चुका है कि अब परस्पर सहकार्य से, उचित समान वितरण से जीना सीखो, अन्यथा अपना सर्वनाश कर लो। इन दो में से निर्वाचन करने का मौका सामने आ गया है।

(२) विश्व का जो विकास हुआ है, उसमें विज्ञान के विकास की बराबरी करने के लिए मानवता को नीति के विषय में सहकार्य, साहाय्य, समान वितरण एवं साधन-शुद्धता की छलांग मारनी होगी।

(३) अतः गांधीवाद का प्रात्यक्षिक स्वरूप, जाति-हीन, वर्ग-हीन, शोषण-हीन, शासन-मुक्त समाज की स्थापना है। इसमें निजी संपत्ति को स्थान नहीं। इसे चाहे राजकीय, आर्थिक, सामाजिक लोकशाही कहें, चाहे मानवता का उदय, हम इसे 'अहिंसक समाज-रचना' कहेंगे।

भिन्न-भिन्न स्वार्थों से भरी संघर्षों की इस दुनिया में यह कैसे सम्भव हो सकेगा? संघर्ष का निराकरण कैसे होगा? यह यक्ष-प्रश्न संसार के समक्ष उपस्थित है। इसलिए कुछ लोग अधिक से अधिक लोगों का अधिक से अधिक हित (Greatest good of the Greatest number) करने का प्रयत्न कर, बाकी लोगों को मरने देते थे। दूसरे लोग कुछ आदमियों को मार कर शेष को एक ही साँचे में ढला हुआ नीरस, विविधता-हीन और आज्ञानुकूल जीवन बिताने के लिए विवश करते थे। जब जीवन-साधन कम थे, तब की बात दूसरी थी। पर अब जब कि विज्ञान ने सबको आश्वासन दिलाया है कि साधन विपुल हैं, तब भी क्या समाज में यही आतंक मचा रहेगा? रेल के डिब्बे खाली हैं और सबके लिए पर्याप्त स्थान है, ऐसा अनुभव आने पर भी क्या रोज धक्कामुक्की और जल्दबाजी होती रहेगी?

पशुओं में और मनुष्यों में अंतर है। बैल के सामने घास डाल दी जाय, तो दूसरे बैल के आने तक वह नहीं रुकता। पर छोटा बालक भी यदि जान ले कि रसोई तैयार हो गयी है, तो मेहमानों के लिए पाव-आधा घंटा ठहर जाता है। मानवता के सामाजिक प्रादुर्भाव के लक्षण सामने देखते हुए भी समाज बच्चों से भी अधिक बचपन करेगा, ऐसा हम क्यों मानें? अपनी नाक कटा कर दूसरों का अपशकुन करने वाले क्या मानव-समाज में रह सकेंगे? नहीं। इसके विपरीत, सबको पर्याप्त मात्रा में मिलेगा और मानवता का भी विकास होगा, ऐसा दिखेगा तो लोग पूरी शक्ति लगा कर उसके लिए यत्न करने में होड़ करेंगे। इस स्थिति का तीव्रता से दर्शन कराना गांधी-विचार का कार्य है। संक्षेप में साधन-शुद्धि, विश्व-कुटुम्ब और सबके लिए एक और एक के लिए सब, यही गांधी-विचार का प्रात्यक्षिक स्वरूप है।

(तेलुगु 'भूदानमु' से साभार)

पंचामृत

[विनोबा ने कहा–हम विश्वमानव हैं, किसी देशविशेष के अभिमानी नहीं, किसी धर्मविशेष के आग्रही नहीं, किसी सम्प्रदाय या जातिविशेष के बंदी नहीं। विश्व के सद्विचार-उद्यान में विहार करना हमारा स्वाध्याय होगा, सद्विचारों को आत्मसात् करना हमारा अभ्यास होगा और विरोधों का निराकरण करना हमारा धर्म होगा। विशेषताओं में सामंजस्य करके विश्व-वृत्ति का विकास करना हमारी वैचारिक साधना होगी। इस दृष्टि से विहार करते हुए सर्वोदय के लिए जो पूरक एवं पोषक सुविचार हमारे दृष्टिपथ में आये, उनसे बना हुआ यह 'पंचामृत' 'भूदान-यज्ञ' के पाठकों की सेवा में प्रस्तुत कर रहे हैं। —विमला]

विश्वधर्म का अरुणोदय

"बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में मेरी दृष्टि में मानव-जाति को किन प्रमुख संघर्षों या समस्याओं का सामना करना पड़ेगा," इस अशुभ प्रश्न का उत्तर प्रत्येक व्यक्ति खतरा उठा कर ही देगा। यदि वह इस प्रश्न का कोई उत्तर न दे और भविष्य की ओर से आँखें मूँद ले, तो यह और भी अधिक खतरनाक बात होगी।

मेरा उत्तर सबसे अधिक खतरों से भरा है। मेरी दृष्टि में इस बात की कोई सम्भावना नहीं कि भविष्य में होने वाला बड़ा संघर्ष ऐसे तृतीय विश्व-युद्ध का रूप धारण कर लेगा, जिसमें आण्विक शस्त्रास्त्रों का खुल कर प्रयोग हो। हमारे नवीन शस्त्रास्त्र दोनों पक्षों की सेनाओं और नागरिकों के लिए समान रूप से घातक सिद्ध होंगे। युद्ध सम्बधी परंपरागत धारणाओं में हुए उक्त दो परिवर्तन इतने क्रान्तिकारी हैं कि यदि उनके फलस्वरूप मानवजाति के आत्म-विनाश के बजाय युद्ध का पूर्णरूपेण मूलच्छेद हो जाय, तो मुझे इसमें कोई आश्चर्य न होगा।

इस बात को दृष्टि में रखते हुए कि भूतकाल में युद्ध ही सभ्यताओं के पतन और विनाश के मुख्य कारण थे, यह घटना मानव-जाति के लिए एक नवीन और सुखद भविष्य की सृष्टि करेगी।

यह प्रश्न है कि आधुनिक मानव अपनी आत्मा की आध्यात्मिक रिक्तता को किस प्रकार पूरा करेगा। यह रिक्तता आधुनिक विज्ञान के फलस्वरूप उत्पन्न हुई है। विज्ञान ने परम्परागत धार्मिक विश्वासों को उखाड़ फेंका है, परन्तु रिक्त स्थान को पूर्ति करने में वह स्वयं भी असमर्थ रहा है। विज्ञान ने मनुष्य को जड़ प्रकृति और मानव-शरीर पर नियंत्रण स्थापित करने की अत्यधिक शक्ति और क्षमता प्रदान कर दी है, लेकिन आत्म-नियंत्रण के कार्य में वह मनुष्य की कोई सहायता नहीं कर सकता और वस्तुतः आत्म-संयम ही सदैव मनुष्य की सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण और कठिन समस्या रही है।

आज इसकी विशेष रूप से इसलिए आवश्यकता है कि जड़ प्रकृति पर नियंत्रण करने की क्षमता में बहुत अधिक वृद्धि हो गयी है। वह उस युवक के समान है जिसने प्रौढ़ व्यक्तियों के शस्त्रास्त्र तो धारण कर लिए हैं, परंतु जिसका मस्तिष्क अभी परिपक्व नहीं हुआ है। ऐसा युवक अपने साथियों और स्वयं अपने लिए उस समय तक खतरा बना रहेगा, जब तक वह आध्यात्मिक दृष्टि से भी उतना ही साधन-सम्पन्न और उन्नत न हो जाय।

लेकिन आध्यात्मिक परिपक्वता विज्ञान के द्वारा नहीं, बल्कि धर्म के द्वारा ही प्राप्त हो सकती है। इसलिए मुझे यह आशा है कि बीसवीं सदी का मानव पुनः सच्चे धर्म की खोज में निकल पड़ेगा और मुझे विश्वास है कि वह धर्म को खोज लेगा। लेकिन मेरा यह भी विश्वास है कि यह धर्म परम्परागत धर्म से इतना भिन्न होगा कि पहली दृष्टि में मानव के इस नये धर्म को पहचाना भी नहीं जा सकेगा।

—आर्नोल्ड ट्वायनबी

नेहरूजी की गंभीर चेतावनी

गत १६ नवम्बर को प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने लोक-सभा में घोषित किया कि इस बात की पूरी आशा है कि आगामी चार-पाँच वर्षों के भीतर ही हम अणुशक्ति का अच्छी तरह उपयोग करने लगेंगे। आपने कहा–मुझे उम्मीद है कि दूसरी आण्विक भट्टी बम्बईवाली भट्टी से कहीं अधिक शक्तिशाली होगी तथा एक वर्ष बाद यह काम करने लगेगी। नेहरूजी ने यह वक्तव्य उस गैरसरकारी प्रस्ताव पर किये गये अपने भाषण के प्रसंग में दिया, जिसमें उनसे कहा गया था कि विज्ञानवेत्ताओं का एक आन्तर्राष्ट्रीय आयोग संघटित किया जाय, जो इस बात की जाँच करे कि अणु-बमों या हाइड्रोजन-बमों के परीक्षण से कितनी क्षति हुई है। इसके साथ ही नेहरूजी से यह भी निवेदन किया गया था कि वे अपने नैतिक प्रभाव का उपयोग कर इस प्रकार के परीक्षण करने वाले राष्ट्रों को इस काम से रोकें।

मानव के त्राण का उपाय नहीं

नेहरूजी ने कहा कि अणुअस्त्रों की वजह से जो खतरा पैदा हो गया है, उससे मानव-समाज के त्राण का कोई उपाय नहीं दीखता। वर्तमान अवस्था मानवता के लिए अच्छी नहीं प्रतीत हो रही है। अभी तो अमेरिका, ब्रिटेन और रूस के पास ही ये संहारक अस्त्र हैं और पारस्परिक विनाश के भय से वे उनका प्रयोग नहीं कर रहे हैं, किन्तु वह समय भी आने वाला है जब कि इस क्षेत्र में और प्रगति एवं अनुसन्धान होने पर कितने ही अन्य साधनहीन देश ये अस्त्र बनाने में समर्थ हो सकेंगे तथा उस समय संसार के लिए और भी खतरा बढ़ जायगा। उस अवस्था का सामना किस प्रकार किया जा सकेगा, इसकी आज कल्पना भी नहीं की जा सकती।

नैतिक प्रभाव डालने की बात का मैं समर्थन करता हूँ। अणुशक्ति का प्रवेश हमारे जीवन में हो चुका है। आगे चल कर इस क्षेत्र में बराबर खोज होती जायगी और इस विज्ञान का विकास होता रहेगा।

वर्तमान अवस्था खतरनाक

इस शक्ति का उपयोग किस प्रकार होगा यह मानव समाज पर, प्रयोग करने वालों के विवेक पर, उनकी आकाक्षाओं पर निर्भर है। यदि मनुष्य का सद्विवेक जाग्रत नहीं होता और मानव-कल्याण के लिए वह इसका प्रयोग नहीं करता, तो उसका विनाश निश्चित है। आज हम यह बिल्कुल नहीं कह सकते कि आगे चल कर कौनसी अवस्था आयेगी तथा मानव-समाज विकास की किस दशा तक पहुँचेगा। वर्तमान अवस्था निश्चय ही बहुत आशाजनक नहीं कही जा सकती। हम अभी इतना ही कर सकते हैं कि मानवबुद्धि को सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त करने का प्रयत्न किया जाय, जिसमें वह निश्चित मार्ग पर चलने की बात ही सोचे।

इसके दो रास्ते हैं—एक तो भय की वृत्ति है। यह भय कि यदि अणुअस्त्रों का प्रयोग हुआ, तो मानव का विनाश निश्चित है, इसके प्रयोगकर्ताओं को इस कार्य से विरत कर सकता है।

आन्तर्राष्ट्रीय आयोग सफल न होगा

प्रस्ताव के पीछे जो भावना है उससे मैं सहमत हूँ, किन्तु अन्य राष्ट्रों से सहयोग की आशा जरा कम ही है। आन्तर्राष्ट्रीय आयोग तभी सफल होगा जब कि परीक्षण करने वाले राष्ट्र अपनी प्रगति के विषय में कुछ बताने को तैयार हों, और इसकी ही सम्भावना बिल्कुल नहीं है।

शुद्ध प्रजातंत्र-पद्धति

हमने अपने शासन में प्रजातन्त्र की पद्धति स्वीकार की है। यद्यपि हमारे यहाँ प्राचीन काल में जनतंत्र अथवा गणतंत्र-प्रणाली थी, फिर भी वर्तमान प्रजातंत्र हमने पश्चिम से ग्रहण किया है। प्रजातंत्र के माने हैं लोकमत का बल। दण्ड-बल की जगह मत-बल उसका आधार है। यह पशुबल से निकल कर नैतिक बल की ओर प्रयाण है। प्रारम्भ में डण्डे के बल से अपनी माँगें मनवायी जाती थीं। बाद में नियम-विधान बने। यहाँ से सभ्यता के युग की शुरुआत हुई। लेकिन तब भी कानून एक व्यक्ति, राजा या उसका मंत्री या मंत्रि-मंडल बनाता था, अर्थात् राजशक्ति के बल पर कानून बनता था और उसका अमल दण्ड-शक्ति से होता था। यह एक व्यक्ति की इच्छा सारे समाज पर लादना था, जो कि दबाव का एक रूप है। बाद में आया प्रजातंत्र, जिसमें एक व्यक्ति की जगह बहुमत के बल से कानून-विधान बनते हैं, जिसमें बहुमत का दबाव अल्पमत पर पड़ता है। इसमें भी अन्तिम बल तो दण्ड ही रहा। जब तक सरकार नाम की संस्था रहेगी, तब तक यही उसका आखिरी बल माना जाता रहेगा। तो क्या इस दण्ड-बल का स्थान आत्म-बल (स्वपीड़न, स्वमरण) को

नहीं दिया जा सकता ? क्या ऐसा करना दबाव है ? हम अब तक दण्ड-बल को अधिकाधिक नरम करते आये हैं; क्षीण करते हुए, नैतिक बलों को प्रभावकारी बनाते आये हैं। मनुष्यता की उत्तरोत्तर उन्नति करते आ रहे हैं, सो क्या इस प्रगति और विचार-विकास को यहीं रोक दिया जाय ? यदि रोक देते हैं, तो क्या हम वास्तविक जनतंत्र की भावना की हत्या नहीं करते ?

दण्ड-बल से लोकमत का बल श्रेष्ठ

जो भी हो, इसमें सन्देह नहीं कि दण्ड-बल की अपेक्षा लोकमत के बल से फैसला करने की पद्धति ज्यादा सभ्य, ज्यादा संस्कृत, ज्यादा उच्च और श्रेष्ठ है। फिर भी इसका अन्तिम बल दण्ड ही है। अर्थात् कानून और दण्ड-बल के सहारे ही उन फैसलों पर अमल कराया जाता है। चाहे फैसला लोकमत के ही द्वारा हुआ हो, परन्तु उसका अमल तो अदालत, पुलिस और जेल के बल पर ही होता है। अतः यह प्रजातंत्र अधूरा है। सच्चा प्रजातंत्र तब स्थापित और प्रचलित तथा रूढ़ होगा, जब हमारा अन्तिम बल भी नैतिक बल हो जाय—अर्थात् प्रायश्चित्त, बहिष्कार, आत्मपीड़न या आत्ममरण उसका स्थान ले लें।

लेकिन यह तो बहुत दूर की बात हुई। अभी जो फैसले हम करते हैं, वे भी प्रायः बहुमत से। इसका अर्थ यह हुआ कि अल्पमत पर बहुमत का दबाव पड़ता है। बहुमत के फैसले अल्पमत को उनके मत और इच्छा के विरुद्ध मानने पड़ते हैं। यही दबाव है। जब तक इस कमी को दूर न किया जाय, तब तक प्रजातंत्र में से दबाव हट गया, ऐसा कह नहीं सकते। किसी रूप में भी दबाव से काम न लिया जाय, यह प्रजातंत्र की प्रतिज्ञा है। इसको पूर्ण करने के लिए इस दबाव को हटाने का उपाय सोचना चाहिए।

अल्पमत का अधिकार : सत्याग्रह

पश्चिमी प्रजातंत्र के विचारक अभी तक इसका कोई उपाय नहीं बता सके। यदि किसीने इसके आगे कुछ सोचा है, तो गांधीजी ने या विनोबाजी ने। गांधीजी ने तो अल्पमत को सत्याग्रह का अधिकार देकर प्रजातंत्र को पूर्ण बनाने का प्रयत्न किया है, किन्तु विनोबाजी ने एकमत से निर्णय करने की प्रणाली प्रचलित करने पर जोर दिया है और इस प्रकार उस दबाव से मुक्ति पाने का उपाय किया है। उनका केवल यह सुझाव नहीं है कि फैसले एकमत से किये जायँ, बल्कि वे इस बात पर भी जोर देते हैं कि जब तक एकमत से फैसला न हो, तब तक कोई फैसला ही न हो, परस्पर विचार-विनिमय करते रहें, एक-दूसरे को समझाते रहें। लेकिन इस तरह फैसला टालने से तो काम नहीं चलेगा, महत्त्वपूर्ण योजनाएँ और प्रश्न अनिर्णित ही रह जायँगे, महीनों-सालों लटकते रहेंगे। अतएव यह हल कारगर नहीं समझा जा सका। बापूजी का हल, अल्पमत का सत्याग्रह, कानून-भंग तो अन्तिम स्थिति में काम आ सकता है। प्रारम्भिक अवस्था में मतदान द्वारा निर्णय की अवस्था में वह सहायक नहीं हो सकता। इस तरह बापू तथा विनोबा के सुझाव एक हद तक तो हमारा साथ देते हैं। तब क्या किया जाय ?

निर्णय के आधार

मेरी समझ से एकमत पर जोर देना प्रजातंत्र की सच्ची भावना के बिल्कुल अनुकूल है। अतः उसे सर्वोपरि मान कर ही चलना चाहिए। हम उसमें जितने सफल होंगे, उतनी ही प्रजातंत्र की सफलता होगी और यह बहुत मुश्किल भी नहीं है। इसके लिए हमें : (१) सिद्धान्त और आदर्श तथा (२) योजना और कार्यक्रम, दो भाग अलग-अलग कर लेने होंगे। पहले भाग का सबंध हमारे मौलिक विश्वास, मान्यता और श्रद्धा से है, जब कि दूसरे का सम्बन्ध प्रत्यक्ष व्यावहारिक बातों से है। पहले भाग में मतभेद ज्यादा मौलिक हो सकते हैं, जब कि दूसरे में क्षणिक, थोथे, काम-चलाऊ, समझौता करने योग्य होते हैं। योजना और कार्यक्रम-सम्बन्धी मतभेदों को सिद्धान्त-सम्बन्धी मतभेद की श्रेणी में मान लेना हमारी भूल है और हम अक्सर यही भूल करते हैं। इसका ध्यान रखते रहें और योजना और कार्यक्रम सम्बन्धी मतभेदों में कुछ देन-लेन की भावना से काम लें, तो फिर अधिक दिक्कत नहीं आ सकती। ऐसे अवसरों के लिए हम सब एकमत से यह अधिकार भी कार्यपालिका को दे सकते हैं कि वह तत्कालीन संकट या आवश्यकता की अवस्था में अपनी जिम्मेदारी पर कोई निर्णय कर ले। बाद में वह निर्णय सही हुआ है या नहीं, कार्यपालिका से अपने विवेक का दुरुपयोग तो नहीं हो गया है, इसकी चर्चा या आलोचना की जा सकती है, जिससे आगे दुरुपयोग की आशंका और स्थिति न पैदा होने पावे।

इस प्रकार एकमत से निर्णय करने के सिद्धान्त के साथ यह तात्कालिक निर्णय की व्यवस्था जोड़ दी जाय, तो बहुमत से होने वाले दबाव से अल्पमत की रक्षा हो जाती है, बल्कि फिर बहुमत अल्पमत जैसा तीव्र भेद भी सहसा रह नहीं जायगा।

मौलिक मतभेद की अवस्था

अब रहा यह प्रश्न कि मौलिक मतभेद की अवस्था में क्या किया जाय ? स्पष्ट है कि एक-दूसरे पर जबरदस्ती अपना मत न लादा जाय, मतभेद को स्वीकार करते हुए अलग-अलग काम किया जाय, लेकिन परस्पर प्रेम, सहनशीलता, सद्भावना से काम लिया जाय। परमत-सहिष्णुता प्रजातंत्र का प्राण है। हम एक-दूसरे से विचार-विनिमय करते रहें, एक-दूसरे को अपना दृष्टि-बिन्दु समझाते रहें और जब तक मतभेद मिट नहीं जाता, तब तक अपना-अपना काम अलग-अलग करते रहें। मतभेद के कारण संस्था या समाज की शांति भंग न करें। मतभेद को मत-द्वेष का रूप न धारण करने दें, क्लेश और कलह उसका परिणाम न निकले। यदि दोनों पक्ष एकमात्र सत्य और औचित्य की दृष्टि से ही विचार करने वाले होंगे, विचार करेंगे, तो कहीं-न-कहीं, कभी-न-कभी, एक विचार पर आकर ठहर जायँगे। यदि यह परिणाम निकला, तो समझना चाहिए कि दोनों ने सत्य को पा लिया, यदि नहीं निकला, मतभेद कायम रहा, तो समझना चाहिए कि अभी दोनों के हाथ आंशिक सत्य और औचित्य ही लगा है और उस दशा में दोनों को अपने सत्य और औचित्य की खोज आगे जारी रखनी चाहिए, उसे अन्तिम और एकमात्र सत्य नहीं मान लेना चाहिए।

('जीवन साहित्य' से) —हरिभाऊ उपाध्याय

आइंस्टीन और जागतिक शांति

[कुछ समय पूर्व सुप्रसिद्ध विज्ञानवेत्ता अलबर्ट आइंस्टीन से कुछ प्रश्न पूछे गये थे। वे प्रश्नोत्तर युद्ध और शान्ति से सम्बन्ध रखने वाले थे, अतः उनका मत स्वयं स्पष्ट है। नीचे हम वे प्रश्नोत्तर दे रहे हैं। —विमला]

प्रश्न—क्या यह कहना अतिशयोक्ति नहीं कि संसार का भाग्य अधर में लटक रहा है ?

उत्तर—बिल्कुल नहीं-मानव-समाज का भाग्य तो हमेशा ही आधर में लटकता रहता है, किन्तु आज उसकी जो अवस्था है, वह इतिहास के किसी ज्ञात समय में कभी नहीं रही है।

प्रश्न—परिस्थिति और समय की इस गम्भीरता की ओर हम मानव-समाज का ध्यान किस प्रकार आकृष्ट कर सकते हैं ?

उत्तर—इसका उत्तर बड़ा सरल है। लड़ाई से इसका समाधान कभी नहीं हो सकता। हम यदि यह मान कर कहें कि सभी आन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं का समाधान शांतिपूर्ण पारस्परिक वार्ता से तथा उचित आधार प्रस्तुत करने से सम्भव है, तो सैन्य-शक्ति के उपयोग से होने वाली क्षति रोकी जा सकती है। लेकिन वार्ता और समझौते के पीछे विश्व-सरकार या किसी आन्तर्राष्ट्रीय संस्था की शक्ति होनी चाहिए।

प्रश्न—अणु-अस्त्रों के निर्माण और संग्रह के लिए जो दौड़-धूप मची है, वह हमें किसी नये विश्वयुद्ध की ओर लिये जा रही है, या जैसा कुछ लोग कहते हैं युद्ध से त्राण का साधन सिद्ध होगी ?

उत्तर—शस्त्रास्त्र-निर्माण की जो होड़ मची है उससे युद्ध नहीं रुक सकता। इस दशा में उठाया हुआ प्रत्येक कदम हमें संहार के निकट ले जाने का ही जिम्मेदार सिद्ध होगा। शस्त्रास्त्र-संघटन के लिए मची हुई यह दौड़-धूप युद्ध रोकने का निकृष्टतम मार्ग है। इसके विपरीत वास्तविक शान्ति की प्राप्ति तब तक संभव नहीं है, जब तक समग्र रूप से सभी राष्ट्र निरस्त्रीकरण की पद्धति का अवलम्बन नहीं करते। मैं यह बात फिर जोर देकर कहता हूँ कि शस्त्रास्त्र-निर्माण की होड़ युद्ध से हमें बचाने के बजाय हमें युद्ध में ही ढकेलेगी।

प्रश्न—क्या यह संभव है कि हम एक साथ ही युद्ध की तैयारी भी करें और मानव मात्र को निकटता के सूत्र में आबद्ध कर सकें ?

उत्तर—शान्ति के लिए प्रयत्न करना और युद्ध की तैयारी करना, ये दोनों काम तो कभी एकसाथ चल ही नहीं सकते, और आजकल तो बिल्कुल नहीं।

प्रश्न—क्या हम युद्ध रोक सकते हैं ?

उत्तर—इसका जवाब बहुत आसान है। अगर हममें साहस हो कि हम शान्ति के लिए ही निश्चय कर लें, तो अवश्य ही हमें शान्ति की प्राप्ति होगी।

प्रश्न—कैसे ?

उत्तर—समझौता कर लेने के दृढ़ निश्चय से। यह स्वयं सिद्ध है; हम कोई खिलवाड़ की बात नहीं कर रहे हैं, वरन् इस समय तो हमारे अस्तित्व के लिए ही संकट आ गया है। अगर हम दृढ़तापूर्वक समस्याओं को शान्तिपूर्ण ढंग से हल करने के लिए तत्पर नहीं होते, तो शांति की अवस्था कभी उत्पन्न नहीं की जा सकती।

प्रश्न—आगामी दस-बीस वर्षों के भीतर हमारी सभ्यता पर अणुशक्ति के किसी प्रभाव का क्या आप अनुमान कर सकते हैं ?

उत्तर—अभी कुछ ठीक नहीं कहा जा सकता। हमारे सामने इस समय जो यांत्रिक संभावनाएँ हैं, वे पर्याप्त रूप से सन्तोषप्रद हैं। यदि उनका ठीक ढंग से उपयोग किया गया, तो अच्छा ही है।

प्रश्न—वैज्ञानिकों ने हमारे रहन-सहन के संबंध में जो भविष्यवाणियाँ की हैं, उनके बारे में आपकी क्या राय है, जैसे हमें आगे चल कर प्रतिदिन दो ही घंटे काम करना पड़े, इस सम्भावना के सम्बन्ध में आपका क्या ख्याल है ?

उत्तर—तब भी तो हम वही इन्सान रहेंगे। व्यापक परिवर्तन की कोई बात नहीं उठती। हम पाँच घंटे काम करें या दो घंटे, इसका कोई महत्त्व नहीं है। हमारी असल समस्या स्वभावगत और आर्थिक है और इसका समाधान आन्तर्राष्ट्रीय आधार पर होना चाहिए।

प्रश्न—अणु-बमों का जो बड़ा भारी संग्रह हो चुका है, उनके बारे में फिर क्या किया जा सकता है ?

उत्तर—उन्हें किसी आन्तर्राष्ट्रीय संघटन को दे दिया जाय। जब तक स्थायी और दृढ़ शान्ति का आधार प्रस्तुत नहीं हो जाता तब तक रक्षा का कोई-न-कोई साधन आवश्यक ही है। एकपक्षीय निरस्त्रीकरण संभव नहीं। अस्त्रों को किसी आन्तर्राष्ट्रीय संस्था को ही सौंपना चाहिए, दूसरा कोई उपाय नहीं। निरस्त्रीकरण का ठीक ढंग किसी आन्तर्राष्ट्रीय सरकार के ही नियंत्रण में चल सकता है। सुरक्षा के प्रश्न पर लोगों को बहुत विचार करने की जरूरत नहीं। शान्ति की दृढ़ इच्छा यदि हो, तो हमें किसी प्रकार की बाधाएँ विचलित नहीं कर सकतीं।

प्रश्न—कोई एक व्यक्ति युद्ध अथवा शांति के संबंध में क्या कर सकता है ?

उत्तर—एक-एक व्यक्ति भी बहुत कुछ कर सकते हैं। कम से कम वे इतना तो कर ही सकते हैं कि जो जो लोग काँग्रेस आदि की सदस्यता के लिए खड़े हों, उनसे यह स्पष्ट वचन ले लें कि वे आन्तर्राष्ट्रीय संस्था के लिए प्रयत्न करेंगे और आवश्यक होने पर राष्ट्र की प्रभुसत्ता को नियंत्रित करने की बात आने पर भी न हिचकेंगे। प्रत्येक व्यक्ति को जनमत बनाने का अधिकार है। उसे यह समझ लेना चाहिए कि असल में किस चीज की जरूरत है और यह समझ लेने के बाद उसके अन्दर इतना साहस होना चाहिए कि वह अपनी बात स्पष्ट रूप से कह सके।

प्रश्न—संयुक्त राष्ट्रसंघ का रेडियो संसार की २७ भाषाओं में दुनिया के कोने-कोने में बसे लोगों को शान्ति के संदेश सुनाता रहता है। चूँकि यह बहुत ही संकट का वेला है, इसलिए हम आपसे जानना चाहेंगे कि लोगों को यह सन्देश किन शब्दों में पहुँचाया जाय।

उत्तर—सब बातों पर विचार करने के बाद यही कहा जा सकता है कि आधुनिक समय के सभी राजनीतिक विचारकों में महात्मा गांधी के ही विचार सर्वोत्तम थे। हमें उनकी निष्ठा और भावना के साथ काम करना चाहिए अर्थात् किसी भी अवसर पर हिंसा का प्रयोग नहीं करना चाहिए, बल्कि जो उनमें दोषपूर्ण दिखायी देता हो, उससे अपने को हमें अलग कर लेना चाहिये।

('आइडियाज़ एन्ड ओपिनियन्स' से)

अहिंसात्मक विद्रोह की व्याख्या

'भारत छोड़ो'-आन्दोलन के दिनों में दो नयी विचार-धाराएँ सामने आयीं। एक विचारधारा के प्रेरक समाजवादी थे। उनका कहना था कि स्वातंत्र्य-आंदोलन के प्रसंग में अब अहिंसा का ज़माना लद गया। इसका मुख्य काम जन-जागृति था, और वह अब हो चुका है। अन्तिम और निर्णायक आन्दोलन में, जिसका पुरोगामी अहिंसात्मक संग्राम था, शस्त्र-प्रयोग की बात बिलकुल त्याज्य नहीं मानी जा सकती। दूसरी विचारधारा के प्रेरकों का विश्वास तो अहिंसा में जरूर था, लेकिन उनका भी ख्याल था कि इसकी प्रयोग-विधि में संशोधन और विस्तार की गुंजाइश है। ऐसे लोग अपने ढंग को 'अभिनव सत्याग्रह' या 'अभिनव गांधीवाद' कहते थे। इस संशोधित विधि के अनुसार व्यापक रूप से ध्वंसकार्य, छिपे रह कर कार्रवाइयों और प्रतिद्वन्द्वी सरकार के संघटन की योजना थी।

आत्मबलिदान की आवश्यकता

इस ध्वंसकार्य में लगे लोग यह मानने के लिए बिलकुल तैयार न थे कि सरकारी सम्पत्ति को तहस-नहस करना—जैसे, रेलवे लाइनें उखाड़ना, इमारतें गिराना, पुल तोड़ना, तार की लाइनें काटना—भी हिंसात्मक कार्यों के अन्दर शुमार किया जायगा। उनका मत था कि यह हमारी राष्ट्रीय सम्पत्ति है और अपनी सम्पत्ति के साथ अपनी मर्जी के मुताबिक व्यवहार करने का हमें पूरा अधिकार है। सरकारी हिंसा को बेकार करने के लिए यह जरूरी हो सकता है कि हम उन्हें विनष्ट कर दें।

गांधीजी का विचार इसके प्रतिकूल था। वे कहते थे कि यह तरीका ही बिलकुल गलत है। सरकार के तरीकों से रुष्ट या असन्तुष्ट होकर हमें राष्ट्रीय सम्पत्ति बरबाद करने का कोई अधिकार नहीं है। इसके अतिरिक्त बुराई उन तार की लाइनों, रेलों और इमारतों में नहीं है, वरन् उनमें है, जो बुरे ढंग से उनका प्रयोग करते हैं। इसलिए सम्पत्ति का विनाश करके भी हम बुराई को तो जैसे का तैसा ही छोड़ देते हैं। जड़ तो उसकी कायम ही रहती है। उसको ठीक रास्ते पर लाने के लिए विनाश नहीं, बल्कि आत्म-बलिदान की जरूरत है। इसी प्रकार हम अधिकारियों को दिखा सकते हैं कि भले वे हमें कुचल डालें लेकिन हमें झुका नहीं सकते।

अहिंसा से हृदय-परिवर्तन

ध्वंस-कार्यों से सरकार को पंगु बना देने के सपने देखने वाले गांधीजी से अक्सर कहा करते—आपने 'भारत छोड़ो'-आंदोलन को अहिंसात्मक विद्रोह बताया है। क्या अहिंसात्मक विद्रोह भी सत्ता छीनने का तरीका नहीं है ?

और गांधीजी कहते—बिलकुल नहीं। सत्ता हथियाने की कोई बात ही इसमें नहीं है। यह तो ऐसा तरीका है कि पारस्परिक सम्बन्ध ऐसे सुधर जायँ कि अंग्रेजों का हृदय-परिवर्तन हो जाय और वे स्वयं सत्ता-हस्तान्तरित कर दें। यदि जनता का अहिंसात्मक असहयोग इतना पुर-असर हो जाय कि सारा सरकारी ढाँचा ही लड़-खड़ा जाय या किसी विदेशी शक्ति के आक्रमण के फल-स्वरूप सरकारी तंत्र समाप्त हो चले, तो जनता की संगठित शक्ति स्वभावतः उसका स्थान ले लेगी। लेकिन यह सब तभी सम्भव है, जब जनता के सभी वर्गों के अन्दर एकता हो, मेल हो और समाज विरोधी तत्त्वों से निपट लेने की क्षमता हो तथा उसका आधार अहिंसात्मक शक्ति हो। तभी जनता की सरकार अपनी बातें मनवा सकती है। यह सरकार कभी जुल्म नहीं कर सकती। अपने विरोधियों को भी वह पूरा संरक्षण प्रदान करेगी।

लेकिन जिन्हें गुप्त कार्यों का मजा मिल चुका था, वे इतनी आसानी से मान जाने वाले थोड़े ही थे। उन्होंने तर्क किया—माना कि ध्वंस-कार्य और गुप्त-आंदोलन हिंसात्मक कार्य हैं, परन्तु यह भी तो है कि जिन्हें हमारे ढंग से काम करने की शिक्षा मिली है, वे ही अहिंसा की बात ठीक-ठीक समझ पाते हैं, न कि वे लोग जिन्हें इसका कोई अनुभव नहीं है।

गांधीजी के पास तो जैसे इन तर्कों का जवाब तैयार ही धरा था। वे फौरन कहते कि आप लोग जो कुछ कहते हैं, वह इसी अंश तक ठीक है कि ऐसे आदमी हिंसा का बार-बार प्रयोग करके इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि इससे कुछ होने जाने वाला नहीं है। और फिर वे पूछते—क्या आप लोग यही कहना चाहते हैं कि जो लोग पाप-कर्म में अधिक रत रहते हैं, वे पुण्य के अधिक निकट हैं, न कि वे जिन्हें उसका कोई अनुभव नहीं।

('महात्मा गांधी : दि लास्ट फेज़' से)

न्यूयार्क में सविनय कानून-भंग

सन् १९५५ के जून में २७ शान्तिवादियों ने न्यूयार्क राज्य का वह कानून-भंग किया था, जिसके अनुसार वैमानिक युद्धाभ्यास के अवसर पर रक्षागृहों की शरण लेना अनिवार्य कर दिया गया था और उस नियम को भंग करना जुर्म ठहराया गया था। उस समय ये लोग गिरफ्तार कर १५०० डालर की जमानत पर छोड़े गये तथा अदालत में इन पर मुकदमे चलाये गये। अदालत ने इन्हें सजा तो जरूर दी, किंतु वह उस समय लागू नहीं की गयी।

इनका कहना है कि कानून-भंग करने के हमारे इस विचार और सजा भुगतने की इस तत्परता का कारण यह है कि हम अपने विरोध-प्रदर्शन से जनता को आगाह कर सकें कि सरकार यह कह करके उसे धोखा दे रही है कि अणुबमों के

आक्रमण के समय भी इन रक्षागृहों में जाकर जान बचायी जा सकती है। सच बात यह है कि अणुशस्त्रों से आक्रमण होने पर रक्षा का कोई उपाय कारगर नहीं हो सकता और उसके प्रहार से अपराधी तथा निर्दोष, सबका समान रूप से सफाया हो जाता है।

पाप का प्रायश्चित्त

कहा जाता है कि इस बम का सहारा लेकर कम्यूनिज्म से रक्षा की जा सकती है। कम्यूनिज्म के विरुद्ध यह तर्क रख जाता है कि लेनिन के ही शब्दों में 'मार्क्सवाद ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं करता।' दूसरी बात यह है कि कम्यूनिस्ट हिंसा और शस्त्रबल से सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन करना चाहते हैं। ऐसे अस्त्रों का प्रयोग अपने ही भाइयों के विरुद्ध करके हम इस बात को ही अस्वीकार करते हैं कि उनमें भी ईश्वर की प्रतिमूर्ति विराजमान है। ईश्वर हमारे जन्मदाता हैं और हम सब मनुष्य भाई-भाई हैं। अपनी इस मान्यता के लिए हम प्राण-त्याग करने को भी तैयार हैं। हमारे देश के लोगों ने ही पहले-पहल अणुबम गिराया था, इसलिए उन्होंने जो पाप किया, उसका प्रायश्चित्त हम करना चाहते हैं।

लन्दन में भूदान-गोष्ठी

लन्दन स्थित भारतीय दूतावास के श्री सोमनाथ धर के सभापतित्व में भूदान-आन्दोलन के सम्बन्ध में एक गोष्ठी का आयोजन रेवरेंड डब्ल्यू० ए० कर की ओर से किया गया था, जिसमें श्री जे० एस० ह्वायलैण्ड ने भूदान-आन्दोलन के सम्बन्ध में अपने मत बहुत ही उत्तम ढंग से व्यक्त किये। रेवरेंड कर ने गोष्ठी का आरम्भ करते हुए बतलाया कि ह्वायलैण्ड भारत में एक प्रान्तीय सरकार के आधीन बहुत ही महत्त्वपूर्ण पद पर रह चुके हैं, अतएव उन्हें भारत की भूमि-समस्या के बारे में बहुत ही अच्छा ज्ञान है। इसलिए भूदान-आन्दोलन के सम्बन्ध में विचार प्रकट करने के वे उचित अधिकारी हैं।

श्री ह्वायलैण्ड ने भूदान-आन्दोलन की प्रगति के सम्बन्ध में बहुत ही प्रशंसात्मक बातें कहीं और इसे 'शान्तिपूर्ण कृषि-क्रान्ति' की संज्ञा दी। विनोबाजी श्रीमानों से जिस प्रकार अपनी बात कहते हैं और अपने को उनके परिवार का सदस्य मान कर जिस प्रकार उन्हें भूमि-दान करने को कहते हैं, उसकी श्री ह्वायलैण्ड ने बहुत सराहना की।

कुछ समय पूर्व ब्रिटेन में हैलम टेनीसन द्वारा संस्थापित भूदान-कूप-निधि की चर्चा करते हुए आपने कहा कि हम इस निधि से भारत में कुएँ खुदवाने के काम में थोड़ी-बहुत सहायता कर रहे हैं। आपने श्रोताओं को अपने हाथ का बनाया हुआ एक खिलौना दिखाया और कहा कि ऐसे-ऐसे सात सौ चालीस खिलौने मैं बना चुका हूँ, जिन्हें अपने यहाँ (बर्मिंघम) बेच कर मैंने तीन सौ पौंड की रक़म एकत्र की है। यह सारी रक़म भूदान-कूप-निधि में दी जा चुकी है।

मध्यप्रदेश (भारत) में एक भूदान-दल के साथ भ्रमण कर रहे अपने मित्र श्री डोनाल्ड ग्रुम द्वारा प्रेषित एक पत्र आपने पढ़ कर सुनाया। श्री ग्रुम ने उपर्युक्त पत्र में लिखा था कि पत्र लिखने तक भूदान-यज्ञ में कुल कितनी भूमि प्राप्त हो चुकी है। आपने यह बात बहुत ज़ोर देकर लिखी थी कि कितने ही छोटे-छोटे भू-स्वामियों ने अपनी आधी से भी अधिक ज़मीन इस यज्ञ में भेंट कर दी है।

भाषण के बाद बहुत से लोगों ने अनेक प्रकार की जिज्ञासाएँ प्रकट कीं, जिनका समाधान श्री ह्वायलैण्ड और सभापति ने किया। अन्त में भूदान-कूप-निधि में लोगों से दान देने की प्रार्थना की गयी और उस समय ही ९ पौंड की रक़म एकत्र हो गयी।

नारी-जीवन : एक गंभीर समस्या

मानव-समाज में यदि कोई वर्ग सबसे अधिक दलित और प्रताड़ित है, तो वह है नारी-वर्ग। उसकी अवस्था ठीक वैसी ही है, जैसी समाज में निम्न श्रेणी के कहे जाने वाले वर्ग की है। इसमें सन्देह नहीं कि अपने स्वाभाविक औदार्य एवं पुरुष वर्ग के किंचित् प्रेम एवं घूस में दिये गये वस्त्राभूषणों के भुलावे में आकर वह अपनी दयनीय अवस्था भूल जाती है। किंतु जो अवस्था उसकी है, उसको देखते हुए यदि सामाजिक न्याय की आवश्यकता और अपेक्षा किसी को है तो वह नारी को ही। यह कितनी विडंबना की बात है कि लोकतंत्र और समाजवाद में सामाजिक न्याय और समानता की दुहाई देने वालों की व्यवस्था में भी नारी उठ नहीं पाती।

सबसे बड़ी बात यह है कि सब वर्गों की समानता के लिए जिस नये आन्दोलन की बात कही जाती है, उसका स्पष्ट स्वरूप सविनय अवज्ञात्मक है। और इसी की सहायता से नयी सभ्यता का उदय हो सकता है, किन्तु यह नया आन्दोलन एकाकी पुरुष नहीं चला सकता, उसके लिए नारी का सहयोग नितान्त आवश्यक है। यदि आन्दोलनों में नारी पर्याप्त संख्या में भाग लेने लगे, तो इन अवसरों पर गुण्डई या हिंसा अपने आप कम हो जाय। सविनय अवज्ञात्मक आन्दोलन की जितनी सच्ची प्रतिनिधि नारी है, उतना पुरुष नहीं। निश्चय ही इस क्षेत्र में अथवा औदार्य के क्षेत्रों में पुरुष नारी की बराबरी नहीं कर सकता। ऐसी अवस्था में जब उसके लिए विशेषाधिकारों की माँग होती है, तो उसमें मुँह बिचकाने की कोई बात नहीं आती। कर्तव्यों की अपेक्षा अधिकार मुख्यतया राजनीति का विषय है और राजनीति का काम संघटन शक्ति के बल पर ही चलता है, परन्तु संघटन के काम में पुरुष नारी से श्रेष्ठ है। अतः ऐसा प्रयत्न होना चाहिए कि विशेषाधिकार प्रदान कर नारी का यह हीन पक्ष यथासंभव दूर हो।

आज अविवाहिता नारियों की अवस्था विवाहिताओं की अपेक्षा बहुत ही भिन्न है। यह केवल किन्हीं विशेष मनोभावों या विशेषताओं के कारण नहीं, बल्कि उनका स्तर ही भिन्न होता है। आज इनकी संख्या निरन्तर बढ़ रही है। अविवाहिता नारी का जीवन सर्वथा एकाकी हो ऐसी कोई बात नहीं है। फिर भी उसकी जो अवस्था है वह बहुत ही बारीकी और सावधानी के साथ विचार की वस्तु है। उसका ध्यान आते ही हृदय की कोमल भावनाएँ उद्वेलित हो उठती हैं। संभव है, उसकी हृद्कलिका के खिलने का अवसर ही न आता हो या संभव है, वह खिलते ही मुरझा जाती हो। अथवा संभव है, उसकी द्विचित्तात्मक अवस्था हो, पर जो कुछ भी हो, वह विचारणीय अवस्था है। जब तक कि अविवाहिता नारी अपने को पवित्र और निष्कलंक नहीं रख पाती और जब तक कि उसके एकाकीपन पर निर्मम समाज उँगली उठाना नहीं बन्द करता, तब तक तो उसका जीवन दयनीय है ही और मानस-शास्त्रज्ञों के लिए उसकी अवस्था विचारणीय है ही।

संसार में यही अवस्था विधवाओं की है; भारत में तो उनकी अवस्था और भी भयानक है। सन् १९५१ की जन-गणना के अनुसार ६१ लाख १८ हजार विधवाओं में १ लाख ३४ हजार ऐसी हैं, जिनकी उम्र ५ से लेकर १४ वर्ष तक की है। विधवाओं की दुर्गति वैसे तो सर्वत्र है, किन्तु भारत में यह और अधिक है, जहाँ प्रायः १३ प्रतिशत विवाहिता नारियाँ विधवा हैं। बाल-विधवा और अविवाहिता नारी में सबसे बड़ा अन्तर यही है कि पहली की हृद्कलिका खिलने के पहले ही मुरझा जाती है जब कि दूसरी उसे खिलने का अवसर ही नहीं आने देती। अल्पवयस्का विधवाएँ, विशेषतः वे जिनको कोई पुत्र नहीं होता, समाज के निर्मम प्रहारों का आखेट बनायी जाती हैं। यदि अविवाहिता नारी स्वेच्छा-प्रेरित अतृप्त और दुखी जीवन बिताती है, तो विधवा को विवशतावश ऐसा जीवन व्यतीत करना पड़ता है।

विधवाओं की अवस्था के प्रति पिछले दिनों समाज में सहानुभूति का भाव उमड़ा था। आरम्भ में तो इसके विरुद्ध बड़ा हो-हल्ला मचा, किन्तु आगे चल कर यह आन्दोलन शिथिल पड़ गया। समाज-सुधारकों को बड़ी प्रसन्नता हुई कि एक बड़े दुर्ग को ध्वस्त करने में उन्हें सफलता मिली। लेकिन भारत इतना बड़ा देश है कि इसमें एक हवा यदि कहीं बही, तो फिर वह उतने ही क्षेत्र तक परिमित रह जाती है। आगे न तो उसका कोई प्रभाव पड़ता है और न वह उस क्षेत्र को ही देर तक प्रभावित कर पाती है।

ऐसी स्थिति में एक बड़ा प्रश्न हमारे सामने यह अवश्य रह जाता है कि भारत में सदियों से व्याप्त जो रूढ़िवादिता और कट्टरपंथी है, वह कब दूर होगी और नये विचारों को आत्मसात करने की प्रवृत्ति कब उत्पन्न होगी। हमारे समाज-सुधारकों और क्रान्तिकारी विचार रखने वालों को केवल तर्क-वितर्क से अपना पक्ष दृढ़ समझ लेने की भ्रमपूर्ण भावना से आगे बढ़ कर इस अवस्था पर भली भाँति विचार करना चाहिए। ऐसे तो हर नये प्रश्न पर वाद-विवाद होता रहेगा, परन्तु उसका फल कुछ न निकलेगा। प्रत्येक नये प्रश्न पर गर्मागर्म बहस होती रहेगी और फिर भले ही कुछ लोग उससे प्रभावित होकर आगे बढ़ें, किंतु समाज का पूरा ढाँचा जैसे का तैसे रह जायगा। यही अवस्था विधवा-विवाह एवं अविवाहिता नारियों की रह जायगी और समाज का स्वरूप अपरिवर्तित गति से चलता रहेगा। यह अवस्था निश्चय ही गंभीरतापूर्वक विचारने योग्य है।

('मैनकाइंड' से साभार) —डॉ. राममनोहर लोहिया

लायसेन्स नं. ए. ३४ रजिस्टर्ड नंबर ए. ३५४
(पहले से डाक-महसूल दिये बिना भेजने का परवाना प्राप्त)

सामूहिक पदयात्रा के बढते चरण

आसाम : सामूहिक पदयात्रा के मोर्चे पर

आसाम प्रांत में सामूहिक पदयात्रा का चक्र अभी तक घूम नहीं पाया था। वहाँ काम कठिन है, ऐसा ही सोचा जाता था। फिर भी २१ अक्तूबर से ६ नवंबर तक सामूहिक पद-यात्रा का कार्य चला। जब आसाम प्रांत में प्रवेश किया और वहाँ की जमीन और फसल देखी, तो दिल में लगा, इतनी अच्छी जमीन कौन देगा।

दरांग जिले के चोटिया क्षेत्र के २०० गाँवों में सामूहिक पदयात्रा-सप्ताह मनाने का तय हुआ। शिविर जोमागुरी में था। आसाम के कार्यकर्ता आये थे। गांधी-निधि के कार्यकर्ता और कस्तूरबा की कुछ बहनें भी उपस्थित थीं। सेवाभावी श्रीमती अमलप्रभा दास भी आयी थीं। शिविर-संचालन के लिए बिहार से श्री वैद्यनाथ चौधरीजी और इलाहाबाद से श्री सुरेशराम भाई भी आये थे। शिविर का आयोजन, नियोजन और बौद्धिक इन दो सेवकों के कारण अच्छा रहा। १३ कार्यकर्ताओं ने सन् '५७ तक दरांग और कामरूप क्षेत्र में सामूहिक पदयात्रा द्वारा अखंड काम करने का तय किया। २ महीने का कार्यक्रम बना।

सामूहिक पदयात्रा की पूर्वतैयारी और शिविर का कार्यक्रम अच्छी तरह नहीं हुआ था। फिर भी १२ टोलियाँ निकलीं। स्थानिक कार्यकर्ताओं ने अच्छा साथ दिया। जहाँ पर इतनी अच्छी जमीन, जमीन का परिमाण कम, (३० एकड़ वाला बड़ा जमीनदार माना जाता है।) जमीन पहले ही बँटी हुई याने जमीन की विषमता कम, २५-३० घरों की बस्ती में ४-५ भूमिहीन होंगे, वहाँ ५०० दाताओं ने ५०० एकड़, याने १४०० बीघा दान दिया, जिसमें दो ग्रामदान भी सम्मिलित हैं। २०० दाताओं ने १०००) रु० वार्षिक का संपत्तिदान दिया। ७ पूरा समय देने वाले और १०-१२ जीवनदानी मिले। साधनदान मिला, साहित्य आदि बेचा गया।

यहाँ केवल कमी प्रयत्न की है। जनता में प्रेम, सहृदयता, सहकारी और विधायक वृत्ति काफी देखने में आयी। राजकीय पक्षों में बहुत तनातनी नहीं दिखी और न पक्षांतर्गत दलबंदियाँ दिखायी दीं। गाँव आदर्श मालूम हुए। न बहुत बड़े गाँव हैं और न बहुत छोटे। साफ-सुथरा वातावरण था। गाँवों में ग्रामोद्योग, गृहोद्योग काफी मात्रा में दिख पड़े। घर-घर बुनाई है और धान-कुटाई की ढेकी है। हाथकुटे चावल ही खाये जाते हैं। साग-सब्जी, फल आदि में हर घर स्वावलंबी है। हर घर में बाँस काफी मात्रा में होते हैं, उनसे और घास से सुन्दर मकान बनाते हैं। यह सारा देखते हुए ऐसा लगता है कि यहाँ ग्रामराज का चित्र कुछ नजर आता है। भूदान के जरिये बाकी चित्र जल्द से जल्द पूरा कर सकते हैं।

सामूहिक पदयात्रा-सप्ताह से भूदान-कार्यकर्ताओं को अच्छा मार्गदर्शन मिला। राजनीतिक पक्षवाले भी काफी प्रभावित हुए। कुछ लोग कहने लगे कि इस तरह से सत्ता, कीर्ति की अभिलाषा मन में न रखते हुए भूदान, सर्वस्वदान, ग्रामदान, समयदान और जीवनदान लोग दे सकते हैं, ऐसा अखबारों में तो हम पढ़ते थे, प्रत्यक्ष दर्शन नहीं हुआ था, सो यहाँ हुआ। पूरी तरह से हम इसे मदद करेंगे, ऐसा भी उन्होंने कहा। आशा है, जितना आसाम पीछे रहा, उतना ही वह अब आगे जायगा।

हैदराबाद : तेलंगाना के महबूबनगर जिले की कुल्वकुती तहसील में ता. ७ अक्टूबर से २६ अक्टूबर तक पदयात्रा हुई। श्री अच्युतभाई देशपांडे की अध्यक्षता में शिविर हुआ। श्री यू० केशवराव, श्री अनंत रंगाचारी आदि ने हिस्सा लिया। ७ टोलियाँ प्रचारार्थ निकलीं। १०५ गाँवों में संदेश पहुँचाया। १९३ दाताओं से १५८८ एकड़ भूदान मिला। २७ संपत्तिदान-पत्र मिले। ३२ पूरा समय देने वाले कार्यकर्ता मिले। १२५) की साहित्य-बिक्री हुई। भूदान-पत्रों के ११ ग्राहक बने। सामूहिक पदयात्रा का यह पहला ही प्रयोग बहुत प्रेरक और उत्साहवर्धक रहा।

उड़ीसा : दशपल्लगणिका थाने में २८ सितंबर से ४ अक्टूबर तक पदयात्रा हुई। एक ग्रामदान और पंद्रह एकड़ भूदान मिला। ५१) का साहित्य बेचा गया।

देवगड वणाई के वरगड अंचल में ६ अक्टूबर से ३१ अक्टूबर तक पदयात्रा हुई। २१३ गाँवों में संदेश पहुँचाया गया। २२३ दाताओं से ८१३ एकड़ भूदान, ८१३) संपत्तिदान-पत्र और पूरा समय देने वाले १३ कार्यकर्ता मिले। १४०) की साहित्य-बिक्री हुई। संबलपुर के संयोजक ने लिखा है कि वणाई अंचल में ८ ग्रामदान मिले।

सामूहिक पदयात्रा उपसमिति
पो० नालवाडी, वर्धा

—नारायण काळे

बिहार में सामूहिक पदयात्रा

दरभंगा जिला भूदान-समिति की ओर से २१ अक्तूबर से सदर थाने के उत्तरीय हिस्से के १४६ गाँवों में सामूहिक पदयात्रा चली, जिसका शिविर-समारोह ३०-३१ अक्तूबर को भूदान-समिति के संयोजक, श्री गजानन दास के सभापतित्व में धरणीधर आश्रम, लालगंज में संपन्न हुआ। लगभग १०० कार्यकर्ताओं ने उत्साह के साथ शिविर में भाग लिया। सामूहिक पदयात्रा के संयोजक, श्री चतुर्भुज राय ने पूर्व-तैयारी के कामों पर प्रकाश डालते हुए भूमिहीनों को संगठित होकर अपनी मांग बुलंद आवाज में जाहिर करने के लिए जोर डाला। अन्य सदस्यों के भी भाषण हुए। १५ टोलियाँ फिर से सामूहिक पदयात्रा पर निकलीं। उसका समापवर्तन-समारोह १० नवंबर को पचाढ़ी संस्कृत हाईस्कूल के मैदान में हुआ। ५० कार्यकर्ताओं ने भाग लिया। सदर थाने के पूर्वीय हिस्से के २०० गाँवों में सामूहिक पदयात्रा का यह कार्यक्रम चला और १५-१६ नवंबर को सोनकी गाँव में श्री रामचन्द्र मिश्र के सभापतित्व में शिविर-समारोह मनाया गया।

२१ अक्तूबर से १६ नवंबर तक की सामूहिक पदयात्रा १६२ दानपत्रों द्वारा ३० बीघा ६ कट्ठा जमीन, ८९२ संपत्तिदान-पत्रों द्वारा १४० मन गल्ला, ५५६) प्राप्त हुए। ११३) की साहित्य-बिक्री हुई। १० ग्राहक बने। ३९४ भाइयों से श्रमदान मिला। ३१६ गाँवों में काम हुआ। १५ परिवारों में ८८ बीघा भूमि वितरित की गयी। प्रथम ग्रामदानी गाँव का नाम भजौरा नहीं, **भरौजा** है।

मुँगेर जिले के शेखपुरा थाने के कटारी ग्राम में जिला-भूदान-समिति के तत्त्वावधान में ११-१२ नवंबर को एक शिविर का आयोजन किया गया। बाद में थाने के १४१ गाँवों में ९ टोलियों के द्वारा ३०९ मील की पदयात्रा हुई, जिसमें ९ भूदान-पत्र, ६३ संपत्तिदान-पत्र मिले। ७९ एकड़ भूमि का वितरण हुआ। १६२) की साहित्य-बिक्री हुई। सर्वोदय-सेवक और भूदान-यज्ञ के ग्राहक बनाये गये।

मुँगेर जिले के जमुई थाने के १२७ गाँवों में ३९१ मील की पदयात्रा हुई। इस पदयात्रा में २७१) का साहित्य बिका, 'भूदान-यज्ञ' के १३ ग्राहक बनाये गये। १८७ एकड़ जमीन भूमिहीनों में वितरित की गयी। १०६) सालाना के दान-पत्र मिले।

पूर्णियाँ जिले को कोढ़ा थाने में ३५९ मील की १३२ गाँवों में ११ टोलियों ने सामूहिक पदयात्रा की। २२२ एकड़ भूमि का १८७ आदाताओं में वितरण किया गया। ३८८ सम्पत्ति-दान-पत्रों द्वारा २०६६) रु० का संपत्तिदान भी मिला। ८ एकड़ नया भूदान मिला। १२५) रु० की साहित्य-बिक्री हुई। ८ मन अनाज और १ बैल भी दान में मिला। धरहरा थाने में कालेज के छात्रों ने भी सामूहिक पदयात्राएँ कीं। इस पदयात्रा में ११७) का साहित्य बिका। ६७५) रु० के संपत्ति-दान-पत्र मिले। ११ दानपत्रों द्वारा करीब ८ एकड़ भूदान मिला।

गया जिले के **ममदुमपुर** थाने में २ अक्टूबर से २८ अक्टूबर तक १० टोलियों ने सामूहिक पदयात्रा की। १२५ गाँवों में भूदान-यज्ञ का संदेश पहुँचाया गया। अब इस थाने में संभवत: ऐसा कोई गाँव न रहा, जहाँ भूदान एवं सर्वोदय का संदेश न पहुँचा हो। १९ दाताओं से भूदान और १५८ दाताओं से संपत्तिदान मिला। संपत्तिदान में करीब ७० मन अनाज भी मिला। १४ जीवनदानी और ४२ सर्वोदय-सेवक भी प्राप्त हुए। १५०) की साहित्य-बिक्री हुई। १०० भूमिहीन परिवारों में १०० एकड भूमि का वितरण जन-आधारित पद्धति से हुआ। १७ अक्टूबर से घोषी थाने में और ४ नवंबर से जहानाबाद थाने में भी सामूहिक पदयात्रा शुरू हुई है। १४ नवंबर तक घोषी थाने में करीब १२५ एकड़ भूमि का वितरण हो चुका है।

विषय-सूची

क्रम	विषय	लेख	पृष्ठ
१.	क्रान्तिकारी निर्णय	विनोबा	१
२.	हर व्यक्ति धर्म और सेवा के लिए जिम्मेदार	,,	२
३.	सर्वोदय-कल्पना का गाँव	धीरेंद्र मजूमदार	३
४.	भीषण अन्याय	टॉलस्टॉय	४
५.	निष्काम सेवा की आवश्यकता	विनोबा	४
६.	बारिश में भी भगवद् प्रार्थना	,,	६
७.	सर्वोदय की दृष्टि		
	१. आर्थिक संयोजन की बुनियाद बदलिये	दादा धर्माधिकारी	६
८.	गांधी-विचार का आचारात्मक स्वरूप	अच्युतभाई देशपांडे	७
९.	पंचामृत	——	८
१०.	सामूहिक पदयात्रा के बढ़ते चरण	——	१२

सिद्धराज ढड्ढा, सहमंत्री अ० भा० सर्व-सेवा-संघ द्वारा भार्गव-भूषण प्रेस, वाराणसी में मुद्रित और प्रकाशित। पता : राजघाट, काशी। फोन नं० १२८५